ऋजुपाठम्।

ईश्वरचन्द्रविद्यासागरप्रणीतम्।

तृतीयो भागः।

अभिनवसंस्करणम्।

कलिकाता राजधान्याम्
घोषयन्त्रे मुद्रितम्।

सं० १९०९।

বিজ্ঞাপন।

বহুশাস্ত্রের তৃতীয় ভাগ হিতোপদেশ, বিষ্ণুশর্ম্ম, মহাভারত, কবিতায়, বঙ্গদেশ ও মেদিনীপুর এই কয়েক দেশ হইতে সংগৃহীত হইল। এই সকল গ্রন্থে যে যে স্থান উদ্ধৃত হইয়াছে, উহাদের কোন কোন স্থান এক বারেই পরিত্যক্ত ও কোন কোন স্থান কিঞ্চিৎ পরিবর্তিত হইয়াছে।

হিতোপদেশকর্ত্তা প্রথমতঃ প্রতিজ্ঞা করিয়াছেন, পঞ্চতন্ত্র ও অন্য এক গ্রন্থ হইতে আপন গ্রন্থ সংগ্রহ করিলেন। বাস্তবিক, হিতোপদেশ পঞ্চতন্ত্রের প্রতিরূপ মাত্র। পঞ্চতন্ত্রের অংশ ও শ্লোকের অধিকাংশই হিতোপদেশে দৃষ্ট হয়। বিশেষ এই, পঞ্চতন্ত্র অপেক্ষা হিতোপদেশের রচনা কিঞ্চিৎ স্পষ্ট এবং প্রকৃত বিষয়ের বৈলক্ষণ্য অথবা বৃদ্ধিকরণ বাসনায়, নানা প্রামাণিক গ্রন্থ হইতে প্রমাণ, দৃষ্টান্ত ও উপদেশ স্বরূপ উত্তম উত্তম শ্লোক উদ্ধৃত হইয়াছে। কিন্তু গ্রন্থকর্তার সম্যক্ সতর্কতার অভাব প্রযুক্ত, অনেক স্থলেই উদ্ধৃত শ্লোক সকল অসংলগ্ন হইয়া উঠিয়াছে। ফলতঃ সেই প্রকৃত বিষয়ের সহিত ঐ সকল শ্লোকের কোন সংস্রব দেখিতে পাওয়া যায় না। হিতোপদেশকর্ত্তা বালকদিগের নীতিশিক্ষার্থে এই পুস্তক রচনা করিয়াছেন (১)। কিন্তু ইহার মধ্যে এক একটি আদিরসঘটিত অতি অশ্লীল উপা-

(১) কথাচ্ছলেন বালানাং নীতিস্তদিহ কথ্যতে।

হিতোপদেশ।

বিজ্ঞাপন।

বিষ্ণুপুরাণ প্রভৃতির সহিত মহাভারতের রচনায় এত বিভিন্নতা যে, যিনি বিষ্ণুপুরাণ, কিম্বা ভাগবত, অথবা ব্রহ্মবৈবর্ত্তপুরাণ রচনা করিয়াছেন, তাঁহার রচিত বোধ হয় না। মহাভারত পুরাণ মধ্যে পরিগণিত নহে। ইহাকে ইতিহাস কহে। ইহাতে পাণ্ডবদিগের বৃত্তান্ত সবিস্তর বর্ণিত হইয়াছে। পুরাণে সৃষ্টি, প্রলয়, মন্বন্তর, নানা রাজবংশ এবং নানাবংশীয় মহাপুরুষদের চরিতকীর্ত্তন থাকে। মহাভারতে এক নির্দিষ্ট রাজবংশের চরিত বিস্তাররূপে বর্ণিত আছে। কিন্তু ইহাতে, আনুষঙ্গিক, নানা পৌরাণিক বিষয়ও সঙ্কলিত হইয়াছে। বিষ্ণুপুরাণের রচনা যেরূপ প্রাঞ্জল ও সরল, মহাভারতের সেরূপ নয়। আবৃত্তি মাত্র সকল শ্লোকের অর্থ সুবিদিত পাওয়া যায় না। অনেক স্থল এমন দুরূহ অথবা অস্পষ্ট যে কোন প্রকারেই অর্থ প্রতীতি হয় না। মহাভারতে নীতিশাস্ত্র ও বিজ্ঞানশাস্ত্রঘটিত প্রস্তাব অনেক আছে। অতএব অতি গুরুতর হইতে অনেকটা পরিত্যক্ত হইয়াছে। স্থানান্তর ইহাতে এত উভয়ই প্রস্তাব আছে যে, সকল উদ্ধৃত করিলে, একখানি বৃহৎ পুস্তক হইতে পারে। ক্ষত্রিয়দের চরিত্র বর্ণিত হইয়াছে। এই গ্রন্থ পরিশিষ্ট মধ্যে বিবেচনা। এতৎকথা অবশ্য অধ্যায় প্রতি অধ্যায় একপ্রকার পরিচয় দিয়াছেন, কিন্তু সকল বিশেষ করেন নাই। প্রাচীন টীকাকার অবলম্বন করেন, এই ধারা রচনাবিষয় বিষয়ী অতীতের বর্ণন করিতে। এবং অতীত্য সাধারণ ইহাই সমাধৃত প্রতিপন্ন হয়। কিন্তু অনুবাদক টীকাকার অনু-সরিয়া, আপন মতের প্রতিপোষক প্রমাণসকল দর্শাইয়াছেন, অতীত্যের অনুরিক্তাই বলিয়া নির্দেশ করিয়াছেন। অনু-রতি ও এই প্রস্তাব রচিয়া, উহারই অতীত উদাহরণ

খান আছে। অতএব অনুমান হইতেছে যে, ব্যাস[illegible] নিমিত্ত নীতিপুস্তক লিখিতে আরম্ভ করিয়া, কি প্রকারে প্রা[illegible] কতক ঐরূপ অলীক উপাখ্যান সঙ্কলন করিতে প্রবৃত্ত হইল। কোন্ ব্যক্তি বিজ্ঞাপনের রচনা করিয়াছেন, আমরা তাহা অবগত নহি। অনেকে বিষ্ণুশর্ম্মাকে বিজ্ঞাপনকর্ত্তা বলিয়া থাকেন, কিন্তু তাহার কোন প্রমাণ নাই। বিজ্ঞাপনের চারি অংশে বিভক্ত, মিত্রলাভ, সুহৃদ্ভেদ, বিগ্রহ, সন্ধি। তন্মধ্যে মিত্রলাভ প্রকরণ মাত্র এই পুস্তকে পরিগৃহীত হইয়াছে।

বিষ্ণুপুরাণ অতি প্রাচীন ও পবিত্র গ্রন্থ, [illegible] প্রতীত হয়। পুরাণের যে পাঁচ লক্ষণ নির্দিষ্ট আছে, (১) বিষ্ণুপুরাণ সেই পঞ্চলক্ষণাক্রান্ত। এই পুরাণ [illegible] ক[illegible] উৎকৃষ্ট। অন্যান্য পু[illegible], উহাতে মত[illegible] কথা নাই। সকল পুরাণ অপেক্ষা বিষ্ণুপুরাণের রচনা প্রাচীন বোধ হয়। ভাগবত পুরাণ [illegible] বলিয়া প্রসিদ্ধি আছে। কিন্তু পুরাণ সকলের রচনা পরস্পর এত বিভিন্ন যে, এক ব্যক্তির রচিত [illegible] তাহাতে ও ব্রহ্মবৈবর্ত্তপুরাণ পাঠ [illegible] মুখ হইতে বিনির্গত বলিয়া প্রতীত [illegible] বিষ্ণুপুরাণ প্রস্তাবে উৎকৃষ্ট বটে, [illegible] বিষয় অধিক নাই [illegible] বোধ হইতেছিল [illegible]

মহাভারত [illegible] বিস্তর আছে, কিন্তু

(১) [illegible] বংশো মন্বন্তরাণি চ।
[illegible] চৈব পুরাণং পঞ্চলক্ষণম্।

[illegible]

[illegible]

নিবেদন।

[illegible]

[illegible]

सूची।

—:०:—

ऋजुपाठम्।

तृतीयो भागः।

हितोपदेशः।

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिदवसन्नायां रात्रावस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः (१) कृतान्तमिव द्वितीयमटन्तं व्याधमपश्यत्। तमवलोक्याचिन्तयत् अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनं जातं न जाने किमनभिमतं (२) दर्शयिष्यति। इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः। अथ स व्याधस्तण्डुलकणान् विकीर्य जालं विस्तीर्य च प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः।

---

(१) प्रबुद्ध जागरित।

(२) अनभिमतम् अनिष्टम् अदर्शनीयं वस्तु।



अस्मिन्नेव काले चित्रग्रीवनामा कपोतराजः सपरिवारो वियति विसर्पंस्तांस्तण्डुलकणानवलोकयामास। ततः कपोतराजस्तण्डुलकणलुब्धान् कपोतान् प्रत्याह कुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकणानां सम्भवः। तन्निरूप्यतां तावत्। भद्रमिदं न पश्यामि। प्रायेणानेन तण्डुलकणलोभेनास्माभिरपि तथा भवितव्यम्।

कङ्कणस्य तु लोभेन मग्नः पङ्के सुदुस्तरे।
वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः पथिकः स मृतो यथा॥

कपोता ऊचुः कथमेतत्। सोऽब्रवीत्। अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्नपश्यम् एको वृद्धो व्याघ्रः स्नातः कुशहस्तः सरस्तीरे ब्रूते भो भोः पान्था इदं सुवर्णकङ्कणं गृह्यताम्। ततो लोभाकृष्टेन केनचित् पान्थेनालोचितं भाग्येनैतत् सम्भवति। किन्त्वस्मिन् आत्मसन्देहे (२) प्रवृत्तिर्न विधेया। तन्निरूपयामि तावत्। प्रकाशं ब्रूते कुत्र तव कङ्कणम्। व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति। पान्थोऽवदत् कथं मारात्मके त्वयि विश्वासः।

व्याघ्र उवाच शृणु रे पान्थ प्रागेव यौवनदशायामतिदुर्वृत्तोऽभूवम्। अनेकगोमानुषाणां वधान्मे पुत्रा मृता दाराश्च। वंशहीनश्चाहम्। ततः केनचि-

---

(१) [illegible]।

(२) आत्मसन्देहे आत्मविनाशसन्देहयुक्ते विषये।

[illegible] अवाप् । [illegible] तस्मिन् [illegible] । [illegible] [illegible] सुवर्णशृङ्ग[illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] दुर्निवार । यथा च [illegible] । [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] सरसि [illegible] सुवर्णशृङ्ग[illegible] ।

[illegible] (१) [illegible] प्राप्य [illegible] ।

---

(१) [illegible]

(२) [illegible]

(३) [illegible]

(४) [illegible]

(५) [illegible]

[illegible]

तं पङ्के पतितं दृष्ट्वा व्याघ्रोऽवदत् अहह महाप
पतितोऽसि अतस्त्वामहमुत्थापयामि। इत्युक्त्वा श
शनैरुपगम्य तेन व्याघ्रेण धृतः स पान्थोऽचिन्तयत्

> न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं
> न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
> स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते
> यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः (१)॥

अपरञ्च

> सर्व्वत्र हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः,
> अतीत्य (२) हि गुणान् सर्व्वान् स्वभावो मूर्द्धि वर्त्तते॥

तन्मया भद्रं न कृतं यदत्र मारात्मके विश्वासः कृत
इति चिन्तयन्नेवासौ व्याघ्रेण व्यापादितः खादितश्च
अतः सर्व्वथा अविचारितं कर्म न कर्त्तव्यमिति।

एतद्वचनं श्रुत्वा कश्चित् कपोतः सदर्पमाह ‍
किमेवमुच्यते

(१) अयं धर्मशास्त्रं पठति इति हेतुना दुरात्मनो न ...
न धर्मशास्त्रनिवारणं नापि वेदाध्ययनं दुरात्मनो ...
[illegible] ... अत्र अस्मिन् संसारे ...
एव तथा ... अतिरिच्यते ... यथा ...
[illegible] ... प्रकृत्या स्वभावेन मधुर ...
... वेदापि ... न ...
[illegible]

(२) अतीत्य अतिक्रम्य अभिभूयेति यावत्।

वृद्धस्य वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते ।
सर्वत्रैवं विचारे तु भोजनेऽप्यप्रवर्तनम् ॥

यतः

शङ्काभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले ।
प्रवृत्तिः कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा ॥
ईर्ष्यी घृणी (१) त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः ॥

तदनन्तरं सर्वे तण्डुलकणलोभेन [illegible] जालनिबद्धा बभूवुः ।

ततो यस्य वचनात्तत्रावलम्बितास्तं सर्वे तिरस्कुर्वन्ति स्म । यतः

न गणस्याग्रतो गच्छेत् (२) सिद्धे कार्ये समं फलम् ।
यदि कार्यविपत्तिः (३) स्यान्मुखरस्तत्र (४) हन्यते ॥

तस्य तिरस्कारं श्रुत्वा चित्रग्रीव उवाच नायमस्य दोषः ।

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम् ।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने (५) ॥

---

(१) घृणी दयावान् सर्वदा सर्वत्र जुगुप्साशीलो वा ।

(२) गणस्य समूहस्य [illegible] । अग्रगामी भवेत् न प्रधानो भवेदिति भावः ।

(३) कार्यविपत्तिः कार्यनाशः ।

(४) मुखरः अग्रगामी हन्यते दण्ड्यते ।

(५) बन्धनकाले धेनुजङ्घायां वत्सं बध्नाति जनः, किन्तु धेनोर्दोषो न विद्यते ।

[illegible]

[illegible]

मूषिकश्चित्रग्रीवस्य [illegible] छेत्तुं मत्वरमुपसर्पि चित्रग्रीव उवाच मित्र मा कुरु। प्रथममस्मदाश्रितानामेषां तावत् पाशांश्छिन्धि मम पाशं पश्चात् छेत्स्यसि। हिरण्यकोऽप्याह अहमल्पशक्तिः दन्ताश्च मे कोम[illegible] तदेतेषां पाशांश्छेत्तुं [illegible] समर्थः। तत् यावन्मे द[illegible] न त्रुट्यन्ति [illegible] नद्मि। तदनन्तरमेते[illegible] मपि [illegible] चित्रग्रीव उवा[illegible] [illegible] [illegible] खण्डय।

[illegible] यदाश्रिता[illegible] परित्राण तत्र [illegible]

[illegible]

चित्रग्रीव उवाच [illegible] किन्त्वस्म[illegible] दाश्रितानां दुःख [illegible] अत एव [illegible] ब्रवीमि [illegible] मयसपरगामाधारणी [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

किञ्च

धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति॥
यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मलवाहिना।
यशः कायेन लभ्येत तन्न लब्धं भवेन्नु किम्॥
शरीरस्य गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम्।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः॥

इत्याकर्ण्य हिरण्यकः प्रहृष्टमनाः पुलकितः सन्नब्रवीत् साधु मित्र साधु अनेनाश्रितवात्सल्येन त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते। एवमुक्त्वा तेन सर्व्वेषां बन्धनानि छिन्नानि। ततो हिरण्यकः सर्व्वान् सादरं सम्पूज्याह सखे चित्रग्रीव सर्व्वथा अत्र जालबन्धनविधौ सति दोषमाशङ्क्य आत्मन्यवज्ञा न कर्त्तव्या। इति प्रबोध्यातिथ्यं कृत्वा आलिङ्ग्य च संप्रेषितश्चित्रग्रीवः सपरिवारो यथेष्टदेशान् ययौ। हिरण्यकोऽपि स्वविवरं प्रविष्टः।

अथ लघुपतनकनामा वायसः सर्व्ववृत्तान्तदर्शी साश्चर्य्यमिदमाह अहो हिरण्यक श्लाघ्योऽसि। अतोऽहमपि त्वया सह मैत्रीमिच्छामि। त्वं मां मैत्रेणानुग्रहीतुमर्हसि। एतच्छ्रुत्वा हिरण्यको विवराभ्यन्तरादाह कस्त्वम्। स ब्रूते लघुपतनकनामा वायसो-

मालिनि तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ । तत्र चम्पकवृक्षच्छायायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवसति । तौ दृष्ट्वा काकोऽवदत् सखे कोऽयं द्वितीयः । मृगो ब्रूते जम्बुकोऽयमस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः । काको ब्रूते मित्र अकस्मादागन्तुना (१) सह मैत्री न युक्ता ।
तथा चोक्तम्

> अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।
> मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः ॥

तावाहतुः कथमेतत् । काकः कथयति

अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान् पर्कटीवृक्षः । तस्य कोटरे जरद्गवनामा वृद्धो गृध्रः प्रतिवसति । अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाहारात् किञ्चिदुद्धृत्य ददति तेनासौ जीवति ।

अथ कदाचिद्दीर्घकर्णनामा मार्जारः पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्रागतः । ततस्तमायान्तं दृष्ट्वा पक्षिशावकैर्भयार्तैः कोलाहलः कृतः । तं श्रुत्वा जरद्गवेनोक्तं कोऽयमायाति । दीर्घकर्णो गृध्र[illegible]सभयमाह हा हतोऽस्मि । अथवा

शालिनि तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ। तत्र चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवसति। स दृष्ट्वा काकोऽवदत् सखे कोऽयं द्वितीयः। मृगो ब्रूते जम्बुकोऽयमस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः। काको ब्रूते मित्र अकस्मादागन्तुना (१) सह मैत्री न युक्ता।
तथाचोक्तम्

> अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।
> मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः ॥

तावाहतुः कथमेतत्। काकः कथयति

अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान् पर्कटीवृक्षः। तस्य कोटरे जरद्गवनामा गृध्रः प्रतिवसति। अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाहारात् किञ्चिदुद्धृत्य ददति तेनासौ जीवति।

अथ कदाचिद्दीर्घकर्णनामा मार्जारः पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्रागतः। ततस्तमायान्तं दृष्ट्वा पक्षिशावकैर्भयार्त्तैः कोलाहलः कृतः। तं श्रुत्वा जरद्गवेनोक्तं कोऽयमायाति। दीर्घकर्णो गृध्रमवलोक्य सभयमाह हा हतोऽस्मि। अथवा

---

(१) आगन्तुना सहागतेन अज्ञातकुलशीलेन अनेनैव ।

तावद्भयस्य (१) भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतन्तु भयं वीक्ष्य प्रतिकुर्य्याद्यथोचितम् ॥

अधुना सन्निधाने (२) पलायितुमक्षमः भवतु तावत्
विश्वासमुत्पाद्य अस्य समीपमुपगच्छामि । इत्यालोच्य
उपसृत्याब्रवीत् आर्य्य त्वामभिवन्दे । गृध्रोऽवदत् कस्त्वम् ।
सोऽवदत् मार्ज्जारोऽहम् । गृध्रो ब्रूते दूरमपसर न चेद्धन्त-
व्योऽसि मया । मार्ज्जारोऽवदत् श्रूयतां तावत् मम
वचनम् । ततो यद्यहं वध्यस्तदा हन्तव्यः ।

जातिमात्रेण किं कश्चिद्वध्यते पूज्यते क्वचित् ।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत् ॥

गृध्रो ब्रूते ब्रूहि किमर्थमागतोऽसि ।

सोऽवदत् अहमत्र गङ्गातीरे नित्यस्नायी निरा-
मिषाशी ब्रह्मचारी चान्द्रायणव्रतमाचरंस्तिष्ठामि ।
युष्मान् धर्म्मज्ञानरतान् विश्वासभूमय इति पक्षिणः
सर्व्वे सर्व्वदा ममाग्रे प्रस्तुवन्ति (३) । अतो भवद्भ्यो
विद्यावयोवृद्धेभ्यो धर्म्मं श्रोतुमिहागतः । भवन्तश्चैता-
दृशा धर्म्मज्ञाः यन्मामतिथिं हन्तुमुद्यताः । गृहस्थ-
धर्म्मश्चैषः

---

(१) सदयं भयम् । कम्पयित्वा गतौ ।
(२) आशङ्कितेति शेषः ।
(३) प्रस्तुवन्ति प्रशंसन्ति ।

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुः पार्श्वगतां (१) छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥

यदि वा धनं नास्ति तदा प्रीतिवचसाप्यतिथिः पूज्य
। यतः

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता (२) ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते (३) कदाचन ॥

न्यच्च

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः ।
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥

गृध्रोऽवदत् मार्जारा हि मांसरुचयः पक्षिशावका-
त्र निवसन्ति तेनाहमेवं ब्रवीमि। तच्छ्रुत्वा
र्जारो भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति ब्रूते च मया धर्म-
स्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं (४) दुष्करं व्रतं चान्द्रायणमध्य-
सितम् (५)। यतः परस्परं विवदमानानामपि धर्म-
स्त्राणां अहिंसा परमो धर्म इत्यत्रैकमत्यम्। एवं
श्वास्य स मार्जारस्तरुकोटरे स्थितः।

पार्श्वगतान् पार्श्ववर्तिनः ।

तृणानि दर्भनिर्मितमासनम् भूमिः विश्रामार्थं स्थानम् उदकं पाद-प्रक्षालनाय जलम् सूनृता वाक् मधुरसत्यवचनम् ।

न उच्छिद्यन्ते न प्रत्यादिश्यन्ते धनाभावे चासनादिचतुष्टयमतिथये दातव्यमिति भावः ।

वीतरागेण [illegible] ।

सर्व्वहिंसानिवृत्ता ये नराः सर्व्वसहाश्च ये ।
सर्व्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
एक एव सुहृद्धर्म्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्व्वमन्यत्तु गच्छति ॥
योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयो पश्यतान्तरम् ।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥
स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनापि प्रपूर्य्यते (१)
अस्य दग्धोदरस्यार्थे कः कुर्य्यात् पातकं महत् ॥

ततोऽसौ दिनेषु गच्छत्सु पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं खादति। येषामपत्यानि खादितानि तैः शोकार्त्तैर्विलपद्भिरितस्ततो जिज्ञासा समारब्धा। तत् परिज्ञाय मार्ज्जारः कोटरान्निःसृत्य बहिः पलायितः। पश्चात् पक्षिभिरितस्ततो निरूपयद्भिस्तत्र (२) तरुकोटरे शावकास्थीनि प्राप्तानि। अनन्तरम् अनेनैव जरद्गवेनास्माकं शावकाः खादिता इति सर्व्वैः पक्षिभिर्निश्चित्य गृध्रो व्यापादितः।

इत्याकर्ण्य जम्बुकः सकोपमाह मृगस्य प्रथमदर्शनदिने भवानप्यज्ञातकुलशील एवासीत्। तत् कथं

---

(१) उदरपूर्त्तिर्भव ।
(२) निरूपयद्भिः अन्विष्यद्भिः ।

भवता सह एतस्य स्नेहानुवृत्तिरुत्तरोत्तरं (१) वर्द्धते। अथवा

> यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि।
> निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते॥
> अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् (२)।
> उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (३)॥

यथायं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानपि। मृगोऽब्रवीत् किमनेनोत्तरेण (४)। सर्वैरेकत्र विस्रम्भालापैः (५) सुखमनुभवद्भिः स्थीयताम्। यतः

> न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः।
> व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा॥

काकेनोक्तमेवमस्तु।

एकदा निभृतं शृगालो ब्रूते सखे मृग अस्मिन् वनैकदेशे शस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति। तदहं त्वां नीत्वा दर्शयामि। तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा शस्यं खादति। अथ क्षेत्रपतिना तं दृष्ट्वा पाशो

---

(१) स्नेहानुवृत्तिः प्रणयबन्धनम्।

(२) लघुचेतसाम् अनुदारचित्तानाम्।

(३) उदारचरितानां महात्मनां पृथिव्येव कुटुम्बकं कुलं तादृशाः पुरुषाः सर्वानेव वसुधावासिनो भ्रातॄन् मन्यन्त इत्यर्थः।

(४) किमनेनोत्तरेण एतदीयवाक्यप्रत्युत्तरेणानावश्यकम्।

(५) विस्रम्भालापैः विश्वासपूर्वैः प्रणयमैत्रीकथनैः।

योजितः। अनन्तरं पुनरागतो मृगः पाशैर्बद्धोऽचिन्तयत् को मामितः कालपाशादिव व्याधपाशात् त्रातुं समर्थो मित्रादन्यः। अनन्तरं जम्बुकस्तत्रागत्य उपस्थितोऽचिन्तयत् फलिता तावदस्माकं कपटप्रबन्धेन (१) मनोरथसिद्धिः। एतस्योत्कृत्यमानस्य मांसासृग्लिप्तानि अस्थीनि मयावश्यं प्राप्तव्यानि। तानि च बाहुल्येन भोजनानि भविष्यन्ति। मृगस्तं दृष्ट्वोल्लसितो ब्रूते सखे छिन्धि तावन्मम बन्धनं सत्वरं त्रायस्व माम्। यतः

> आतुरे व्यसने चैव दुर्भिक्षे शत्रुविग्रहे।
> राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः॥

जम्बुकः पाशं विलोक्याचिन्तयत् दृढस्तावदयं बन्धः। ब्रूते च सखे स्नायुनिर्मिताः (२) पाशाः तदद्य भट्टारकवारे (३) कथमेतान् दन्तैः स्पृशामि। मित्र यदि चित्ते नान्यथा मन्यसे तदा प्रभाते यत्त्वया वक्तव्यं तत् कर्तव्यमिति।

अनन्तरं स काकः प्रदोषकाले मृगमनागतमवलोक्य इतस्ततोऽन्विष्यन् तथाविधं दृष्ट्वोवाच सखे किमेतत्।

---

(१) कपटरचनेन [illegible]।
(२) [illegible] निर्मिताः [illegible]।
(३) भट्टारकवारे रविवासरे।

मृगेणोक्तम् अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलमेतत्। तथा-चोक्तम्

> सुहृदां हितकामानां यः शृणोति न भाषितम्।
> विपत् संनिहिता तस्य स नरः शत्रुनन्दनः (१)॥

काको ब्रूते स वञ्चकः क्वास्ते। मृगेणोक्तं मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव। काको ब्रूते उक्तमेव मया पूर्वम्।

> अपराधो न मेऽस्तीति नैतद्विश्वासकारणम्।
> विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि॥
> परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
> वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् (२)॥

ततः काको दीर्घं निश्वस्य प्राह अरे वञ्चक किं त्वया पापकर्मणा कृतम्।

> उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
> तं जनमसत्यसन्धं (३) भगवति वसुधे कथं वहसि॥

अथ प्रभाते क्षेत्रपतिर्लगुडहस्तस्तं प्रदेशं गच्छन् काकेनावलोकितः। तमालोक्य काकेनोक्तं सखे मृग त्वमात्मानं मृतवत् सन्दर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान् स्तब्धीकृत्य तिष्ठ। अहं तव चक्षुषी चञ्च्वा विलिखामि।

---

(१) शत्रुनन्दन शत्रूणामानन्दकरः।

(२) पय पय इति पयसाच्छादितम्। पयोमुखं विषकुम्भमिव तद्वद्विवर्ज्यं।

(३) असत्ये वचनादौ सन्धा अभिसन्धिर्यस्य तम्।

यदाहं शब्दं करोमि त्वमुत्थाय सत्वरं पलायिष्यसे। मृग-
स्तथैव काकवचनेन स्थितः। ततः क्षेत्रपतिना हर्षोत्-
फुल्ललोचनेन तथाविधो मृग आलोकितः। अथासौ
आः स्वयं मृतोऽसि इत्युक्त्वा मृगं बन्धनान्मोचयित्वा पाशान्
ग्रहीतुं सत्वरो बभूव। ततः काकशब्दं श्रुत्वा मृगः
सत्वरमुत्थाय पलायितः। तमुद्दिश्य तेन क्षेत्रपतिना
क्षिप्तेन लगुडेन शृगालो व्यापादितः।

एतत् श्रुत्वा लघुपतनकः पुनराह

> भक्षितेनापि भवता नाहारो मम पुष्कलः (१)।
> त्वयि जीवति जीवामि चित्रग्रीव इवानघ (२)।

हिरण्यको ब्रूते चपलस्त्वं चपलेन सह स्नेहः सर्वथा
न कर्त्तव्यः। किञ्चान्यत् शत्रुपक्षो भवानस्माकम्।
उक्तञ्चैतत्

> शत्रुणा न हि सन्दध्यात् सुश्लिष्टेनापि (३) सन्धिना।
> सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्॥
> दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन्।
> मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥

लघुपतनको ब्रूते श्रुतं मया सर्वम्। तथापि

---

(१) पुष्कलः प्रभूतः प्रचुर इति यावत्।

(२) अनघ निष्पाप विशुद्धचरित इति यावत्। हिरण्यक सम्बोधनमिदम्।

(३) सुश्लिष्टेन सुघटितेन दृढेनेति यावत्।

ममैतावानेव सङ्कल्पः यत् त्वया सह सौहृद्यमवश्यं करणीयमिति। नो चेदनाहारेणात्मानं तव द्वारि व्यापादयिष्यामि।

एतद्वचनमाकर्ण्य हिरण्यको बहिर्निःसृत्याह आप्यायितोऽहं भवतामनेन वचनामृतेन। किञ्च

> रहस्यभेदो (१) याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता (२)।
> क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम्।

एतद्वचनोक्तमेकमपि दूषणं त्वयि न लक्ष्यते। तद्भवतु भवतोऽभिमतमेव। इत्युक्त्वा हिरण्यको मैत्रं विधाय भोजनविशेषैर्वायसं सन्तोष्य विवरं प्रविष्टः। वायसोऽपि स्वस्थानं गतः। ततः प्रभृति तयोरन्योन्याहारप्रदानेन कुशलप्रश्नैर्विस्रम्भालापैश्च कालोऽतिवर्त्तते।

एकदा लघुपतनको हिरण्यकमाह सखे वायसस्य कष्टलभ्याहारमिदं स्थानम्। तदेतत् परित्यज्य स्थानान्तरं गन्तुमिच्छामि। हिरण्यको ब्रूते मित्र क्व गन्तव्यम्। वायसो ब्रूते अस्ति सुनिरूपितं स्थानम्। हिरण्यकोऽवदत् किन्तत्। वायसो ब्रूते अस्ति दण्डकारण्ये कर्पूरगौराभिधानं सरः। तत्र चिरकालोपार्जितः प्रियसुहृन्मे मन्थराभिधानः कूर्मः सहजधार्मिकः (१)

---

(१) रहस्यं गुप्तकथनं तस्य भेदः अन्यस्मिन् प्रकाशः।

(२) चलचित्तता चञ्चलचित्तता।

प्रतिवसति। स च भोजनविशेषैर्मां संवर्द्धयिष्यति। हिरण्यकोऽप्याह तत् किमत्रावस्थाय मया कर्त्तव्यम्। मामपि तत्र नय।

अथ वायसस्तेन मित्रेण सह विचित्रालापसुखेन तस्य सरसः समीपं ययौ। ततो मन्थरो दूरादेव लघुपतनकमालोक्य उत्थाय यथोचितमातिथ्यं विधाय मूषिकस्याप्यतिथिसत्कारं चकार। वायसोऽवदत् सखे मन्थर सवि शेषपूजामस्मै विधेहि। यतोऽयं पुण्यकर्म्मणां धुरीणः (२) कारुण्यरत्नाकरो हिरण्यको नाम मूषिकराजः। एतस्य गुणस्तुतिं जिह्वासहस्रेण यदि सर्पराजः कदाचित् कर्त्तुं समर्थः स्यादित्युक्त्वा चित्रग्रीवोपाख्यानं वर्णितवान्। ततो मन्थरः सादरं हिरण्यकं संपूज्याह भद्र आत्मनो निर्जनवनागमनकारणमाख्यातुमर्हसि। हिरण्यकोऽवदत् कथयामि श्रूयताम्।

अस्ति चम्पकाभिधानायां नगर्यां परिव्राजकावसथः (३)। तत्र चूडाकर्णो नाम परिव्राजकः प्रतिवसति। स च भोजनावशिष्टभिक्षान्नसहितं भिक्षा-

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पात्रं नागदन्तकेऽवस्थाप्य (१) स्वपिति। अहञ्च तदन्नमुत्प्लुत्य प्रत्यहं भक्षयामि। एकदा तस्य प्रियसुहृत् वीणाकर्णो नाम परिव्राजकः समायातः। तेन सह कथाप्रसङ्गावस्थितो मम त्रासार्थं जर्ज्जरवंशखण्डेन (२) चूडाकर्णो भूमिमताडयत्। वीणाकर्ण उवाच सखे किमिति मम कथाविरक्तोऽन्यासक्तो भवान्। चूडाकर्ण उवाच भद्र नाहं विरक्तः किन्तु पश्यायं मूषिको ममापकारी सदा पात्रस्थं भिक्षान्नमुत्प्लुत्य भक्षयति। वीणाकर्णो नागदन्तकं विलोक्याह कथं मूषिकः स्वल्पबलोऽप्येतावद्दूरमुत्पतति। तदत्र केनापि कारणेन भवितव्यम्। क्षणं विचिन्त्य परिव्राजकेनोक्तं कारणञ्चात्र धनबाहुल्यमेव प्रतिभाति। यतः

धनवान् बलवान् लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा।
प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामप्युपजायते॥

ततः खनित्रमादाय तेन विवरं खनित्वा चिरसञ्चितं मम धनं गृहीतम्। ततः प्रत्यहं निजशक्तिहीनः सत्त्वोत्साहरहितः स्वाहारमप्युत्पादयितुमक्षमः सत्रासं मन्दं मन्दमुपसर्पन् चूडाकर्णेनावलोकितोऽहम्। ततस्तेनोक्तम्

(१) नागदन्त, पर्य्यङ्की खोंटी इत्यादिरेव। [illegible]
(२) जर्ज्जर शिर्णे।

धनेन बलवान् लोको धनाद्भवति पण्डितः ।
पश्यैनं मूषिकं पापं स्वजातिसमतां गतम् ।

एतदाकर्ण्य मयालोचितं ममात्रावस्थानमयुक्तमिदानीम्। यच्चान्यस्मै एतद्वृत्तान्तकथनं तदप्यनुचितम् यच्च याच्ञया जीवनम् एतदप्यतीव गर्हितम्। तत् किमहं परपिण्डेनात्मानं पोषयामि भोः तदपि द्वितीयं मृत्युद्वारम्। यतः

रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ।

इत्यालोच्यापि लोभात् पुनरपि तदीयमन्नं ग्रहीतुं ग्रहमकरवम् (१)।

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम् (२)।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ।

ततोऽहं मन्दं मन्दमुपसर्पंस्तेन वीणाकर्णेन जर्जरवंशखण्डेन ताडितोऽचिन्तयं लुब्धो ह्यसन्तुष्टो नियतमात्मद्रोही भवति।

सर्वा एवापदस्तस्य यस्य तुष्टं न मानसम्
सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम् ।
सन्तोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ।

---

(१) ग्रहम् उद्यमम्।

(२) तृषाम् अत्युत्कटाभिलाषाम्। जनयते इत्यात्मनेपदं मित्-प्रयोगात् बोध्यम्।

अभिनिवेशवशादस्मदुदविरहक्षयम् ।
अनुजक्रोडवचन यस्य कस्यापि जीवनम् ।
न सेव्यमानं दूरं यात्यमानस तृष्णया ।
सन्तुष्टस्य करस्थोऽप्ययं भवति मादर ॥

तदत्रावस्थोचितकार्यपरिच्छेदः (१) श्रेयान्। इत्यालोच्याहं निर्जनवनमागतः। ततोऽस्मत्पुण्योदयादनेन मित्रेणाहं स्नेहानुवृत्त्या अनुगृहीतः। अधुना च पुण्यपरम्परया भवदाश्रयः स्वर्ग एव मया प्राप्तः।

एवं ते स्वेच्छाहारविहारं कुर्वाणाः सन्तुष्टाः सुखं निवसन्ति स्म।

अथ कदाचित् चित्राङ्गनामा मृगः केनापि त्रासितस्तत्रागत्य मिलितः। ततः पश्चादायान्तं भयहेतुं सम्भाव्य मन्थरो जलं प्रविष्टः। मूषिकश्च विवरं गतः। काकोऽपि उड्डीय वृक्षमारूढः। ततो लघुपतनकेन सुदूरं निरूप्य भयहेतुर्न कोऽप्यवलोकितः। पश्चात्तद्वचनादागत्य पुनः सर्वे मिलित्वा तत्रैवोपविष्टाः। मन्थरेणोक्तं भद्र मृग कुशलं ते। स्वेच्छया उदकाद्याहारोऽनुभूयताम्। अत्रावस्थानेन वनमिदं सनाथीक्रियताम् (२)।

---

(१) अवस्थोचितकार्यपरिच्छेदः अवस्थानुरूपकार्यनिर्णयः।

(२) वनमिदं त्वया विना अनाथमिवासीत् अधुना अत्रावस्थानेन नाथयुक्तं कुर्विति भावः।

चित्राङ्गो ब्रूते लुब्धकत्रासितोऽहं भवतां शरणमागतः (१) भवद्भिः सह सख्यमिच्छामि। हिरण्यकोऽवदत् मित्रत्वं तावदस्माभिः सह अयत्नेनैव निष्पन्नं भवतः तदत्र भवता स्वगृहनिर्विशेषेण (२) स्थीयताम्। तच्छ्रुत्वा मृगः सानन्दः कृतस्वेच्छाहारः पानीयं पीत्वा जलासन्न-तरुच्छायायामुपविष्टः।

अथ मन्थरेणोक्तं सखे मृग केन त्रासितोऽसि। अस्मिन् विजने वने कदाचित् किं व्याधाः सञ्चरन्ति। मृगेणोक्तम् अस्ति कलिङ्गविषये (३) रुक्माङ्गदो नाम नृपतिः। स च दिग्विजयव्यापारक्रमेणागत्य चन्द्रभागानदीतीरे समावासितकटको (४) वर्त्तते। प्रातश्च तेनात्रागत्य कर्पूरसरःसमीपे भवितव्यमिति व्याधानां मुखात् किंवदन्ती श्रूयते। तदत्रापि प्रातरवस्थानं भयहेतुरित्यालोच्य यथाकार्यं तथारभ्यताम्। तच्छ्रुत्वा कूर्मः सभयमाह मित्र जलाशयान्तरं गच्छामि। काकमृगावपि उक्तवन्तौ मित्र एवमस्तु। ततो हिरण्यको

---

(१) [illegible]

(२) स्वगृह इव स्वगृहे यथा स्वच्छन्दं स्थीयते तद्वदित्यर्थः।

(३) कलिङ्गविषये कलिङ्गाख्ये देशे।

(४) समावासितकटकः सन्निवेशितसैन्यः [illegible] इति भावः।

विश्वस्याह पुनर्जलाशये प्राप्ते मन्थरस्य कुशलं स्थले गच्छतोऽस्य कः प्रकारः (१)।

तद्धितस्य वचनमाकर्ण्य सहसा भयेन विमुग्ध इव तं जलाशयमुत्सृज्य मन्थरश्चलितः। तेऽपि हिरण्यकादयः स्नेहादनिष्टं शङ्कमाना मन्थरमनुजग्मुः। ततः स्थले गच्छन् केनापि व्याधेन काननं पर्यटता मन्थरः प्राप्तः। तं च गृहीत्वा उत्थाप्य धनुषि बद्ध्वा धन्योऽस्मीत्यभिधाय व्याधः स्वगृहाभिमुखं चलितः।

अथ ते मृगवायसमूषिकाः परं विषादमुपगतास्तमनुगच्छन्ति स्म। ततो हिरण्यको विलपति।

> एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य ।
> तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ।
>
> स्वभावजन्तु यन्मित्रं भाग्येनैवाभिजायते ।
> तदकृत्रिमसौहार्दमापत्स्वपि न मुञ्चति (२) ।
>
> न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मजे ।
> विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे स्वभावजे ।

इति मुहुर्विचिन्त्य प्राह अहो मे दुर्दैवम्। अथवा इत्यमेवैतत्।

> कायः संनिहितापायः सम्पदः पदमापदाम्।
> समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भङ्गुरम् ।

---

(१) स्थलीं चलनकर्त्याची का गति ।

(२) निर्मिलेलें होय ।

एवं बहु विलप्य हिरण्यकश्चित्राङ्गलघुपतनकावाह यावदयं व्याधो वनान्न निःसरति तावन्मन्थरं मोचयितुं यत्नः क्रियताम्। तावूचतुः सत्वरं कार्यमुपदिश। हिरण्यको ब्रूते चित्राङ्गो जलसमीपं गत्वा मृतमिवात्मानं निश्चेष्टं दर्शयतु। लघुपतनकस्तस्योपरि स्थित्वा चञ्च्वा किमपि विलिखतु। नूनमनेन लुब्धकेन मृगमांसार्थिना कच्छपं परित्यज्य सत्वरं तत्र गन्तव्यम्। ततोऽहं मन्थरस्य बन्धनं छेत्स्यामि। संनिहिते लुब्धके भवद्भ्यां पलायितव्यम्।

ततश्चित्राङ्गलघुपतनकाभ्यां शीघ्रं गत्वा तथानुष्ठिते सति स व्याधः श्रान्तः पानीयं पीत्वा तरोरधस्तादुपविष्टः तथाविधं मृगमवलोक्य कच्छपं जलसमीपे निधाय कर्तरिकामादाय प्रहृष्टमना मृगान्तिकं चलितः। अत्रान्तरे हिरण्यकेनागत्य छिद्यमानः स कूर्मः सत्वरं जलाशयं प्रविष्टः। स च मृगः आसन्नं तं व्याधमवलोक्योत्थाय द्रुतं पलायितः। उक्तञ्च

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि॥

ततोऽसौ निराशः कटकं प्रविष्टः। मन्थरादयश्च सर्वे मुक्तापदः (१) स्वस्थानं गत्वा यथासुखमास्थिताः।

---

१ मुक्तापदः आपन्मुक्ताः मुक्ता आपदो येभ्यस्ते इति सारः [illegible]

विष्णुपुराणम्।

इन्द्रं प्रति दुर्व्वाससः कोपः।

पराशर उवाच।

दुर्व्वासाः शङ्करस्यांशश्चचार (१) पृथिवीमिमाम्।
स ददर्श स्रजं दिव्यामृषिर्विद्याधरीकरे॥
सन्तानकानामखिलं (२) यस्या गन्धेन वासितम्।
अतिसेव्यमभूद ब्रह्मंस्तद्वनं (३) वनचारिणाम्॥
उन्मत्तव्रतधृग्विप्रः (४) स दृष्ट्वा शोभनां स्रजम्।
तां ययाचे वरारोहां (५) विद्याधरवधूं ततः॥
याचिता तेन तन्वङ्गी मालां विद्याधराङ्गना।

---

(१) शङ्करस्य [illegible]।
(२) सन्तानका [illegible] तत् [illegible]
([illegible]) सन्तानकानां ([illegible]) [illegible]
तत् [illegible] वा।
(३) ब्रह्मन्निति मैत्रेयसम्बोधनम्।
(४) उन्मत्तव्रतधृक् उन्मत्तवेशधारी [illegible]।
(५) वरारोहां [illegible]।

दद‍ौ तस्मै विशालाक्षी मादरं प्रणिपत्य तम् ॥
तामादायात्मनो मूर्ध्नि स्रजमुन्मत्तरूपधृक् ।
कृत्वा (१) स विप्रो मैत्रेय परिबभ्राम मेदिनीम् ॥
स ददर्श समायान्तमुन्मत्तैरावतस्थितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिं देवं सह देवैः शचीपतिम् ॥
तामात्मनः स शिरसः स्रजमुन्मत्तषट्पदाम् ।
आदायामरराजाय चिक्षेपोन्मत्तवन्मुनिः ॥
गृहीत्वामरराजेन स्रगैरावतमूर्द्धनि ।
न्यस्ता रराज कैलासशिखरे जाह्नवी यथा ॥
मदान्धकारिताक्षोऽसौ (२) गन्धाकृष्टेन वारणः ।
करेणाघ्राय चिक्षेप तां स्रजं धरणीतले ॥
ततश्चुक्रोध भगवान् दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ।
मैत्रेय देवराजं तं क्रुद्धश्चैतदुवाच ह ॥
ऐश्वर्यमत्त दुष्टात्मन्नतिस्तब्धोऽसि (३) वासव ।
श्रियो धाम (४) स्रजं यस्त्वं मद्दत्तां नाभिनन्दसि ॥
प्रसाद इति नोक्तं ते (५) प्रणिपातपुरःसरम् ।

---

(१) तां स्रजमादाय चात्मनो मूर्द्धि कृत्वेत्यन्वयः ।
(२) मदेन अन्धकारिते निमीलिते अक्षिणी यस्य सः ।
(३) अतिस्तब्धः अविनीतः ।
(४) श्रियो धाम सम्पदां निवासभूमिम् ।
(५) ते त्वया । उक्तं, प्रयोग ।

पर्यौत्सुकवर्यधर्मेण (१) न चापि शिरसा धृता ॥
मया दत्तामिमां मालां यस्मान्न बहु मन्यसे ।
त्रैलोक्यश्रीरतो (२) मूढ विनाशमुपयास्यति ॥
इतं ब्राह्मणैः: यदर्श मूर्ख शक्र भवान् द्विजैः ।
यतोऽवज्ञातमानार्थं मानिना (३) भवता कृता ॥
मद्दत्ता भवता यस्मात् क्षिप्ता माला महीतले ।
तस्मात् प्रनष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति ॥
यस्य संजातकोपस्य (४) भयमेति चराचरम् ।
तं त्वं मामतिगर्वेण देवराजावमन्यसे ॥
महेन्द्रो वारणस्कन्धादवतीर्य त्वरान्वितः ।
प्रसादयामास तदा दुर्वाससमकल्मषम् ॥
प्रसाद्यमानः स तदा प्रणिपातपुरःसरम् ।
प्रत्युवाच सहस्राक्षं दुर्वासा मुनिसत्तमः ॥
नाहं कृपालुहृदयो न च मां भजते क्षमा ।

---

(१) सर्वेण चन्द्रमौ त्रिलोकी सर्वी लक्ष्मी एव तदानुरेण कृता ।
(२) त्रैलोक्यश्री त्रैलोक्यैश्वर्यम्। अतः यस्मात् मद्दत्तमालाया अवज्ञानाकरणादित्यर्थः ।
(३) मानिना गर्वितेन ।
(४) यस्मात् संजातकोपात्। अत्रादाने षष्ठीयम् चार्षे ।



धन्ये ते मुनयः (१) शक्र दुर्वाससमवेहि माम् ।
गौतमादिभिरन्यैस्त्वं गर्वमापादितो मुधा ।
अक्षान्तिसारसर्वस्वं (२) दुर्वाससमवेहि माम् ।
वसिष्ठाद्यैर्दयासारैः (३) स्तोत्रं कुर्वद्भिरुच्चकैः ।
गर्वं गतोऽसि (४) येनैवं मामप्यद्यावमन्यसे ।
ज्वलज्जटाकलापस्य भृकुटीकुटिलं मुखम्
निरीक्ष्य कस्त्रिभुवने मम यो न गतो भयम् (५) ।
नाहं क्षमिष्ये बहुना किमुक्तेन शतक्रतो ।
विडम्बनामिमां भूयः करोष्यनुनयात्मिकाम् (६) ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो देवराजोऽपि तं ततः
आरुह्यैरावतं ब्रह्मन् प्रययावमरावतीम् ॥

---

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) दयासारैः [illegible]
(४) गतोऽसि [illegible]
(५) त्रिभुवने कुत्र को विद्यते यो मम मुखं निरीक्ष्य भयं न गत इत्यन्वयः ।
(६) अनुनयात्मिकां विडम्बनाम् अनुनयरूपां विडम्बां चेष्टाम् तवानुनयैः क्षमं नास्तीति भावः ।

ध्रुवोपाख्यानम् ।

—:०:—

पराशर उवाच ।

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य (१) तु ।
द्वौ पुत्रौ सुमहावीर्यौ धर्मज्ञौ कथितौ तव (२) ॥
तयोरुत्तानपादस्य सुरुच्यामुत्तमः सुतः ।
अभीष्टायामभूद्ब्रह्मन् (३) पितुरत्यन्तवल्लभः ॥
सुनीतिर्नाम या राज्ञस्तस्याभून्महिषी द्विज ।
स नातिप्रीतिमांस्तस्यां तस्याश्चाभूद् ध्रुवः सुतः ॥
राजासनस्थितस्याङ्कं पितुर्भ्रातरमाश्रितम् (४) ।
दृष्ट्वोत्तमं ध्रुवश्चक्रे तमारोढुं मनोरथम् ॥
प्रत्यक्षं भूपतिस्तस्याः सुरुच्या नाभ्यनन्दत (५) ।
प्रणयेनागतं पुत्रमुत्सङ्गारोहणोत्सुकम् ॥

---

(१) स्वयम्भुवः ब्रह्मणः सकाशादुत्पन्नस्य ।
(२) तव मैत्रेय ।
(३) अभीष्टायां प्रियायाम् ।
(४) राजासनस्थितस्य पितुरङ्कमाश्रितं भ्रातरमुत्तमं दृष्ट्वा ध्रुवः । राजासनस्थितस्य सिंहासनोपविष्टस्य । आश्रितम् आरूढम् ।
(५) नाभ्यनन्दत नाभिनन्दितवान् ।

सपत्नीतनयं दृष्ट्वा तमङ्कारोहणोत्सुकम् ।
पितुः (१) पुत्रं तथारूढं (२) सुरुचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥
क्रियते किं वृथा वत्स महानेष मनोरथः ।
अन्यस्त्रीगर्भजातेन ह्यसम्भूय ममोदरे ॥
उत्तमोत्तममप्राप्यमविवेकोऽभिवाञ्छसि (३) ।
सत्यं सुतस्त्वमप्यस्य किन्तु न त्वं मया धृतः ॥
उच्चैर्मनोरथस्तेऽयं (४) मत्पुत्रस्यैव किं त्वया ।
सुनीत्यामात्मनो जन्म किं त्वया नावगम्यते ॥
उत्सृज्य पितरं बालस्तच्छ्रुत्वा मातृभाषितम् ।
जगाम कुपितो मातुर्निजाया द्विज [illegible] मन्दिरम् ॥
तं दृष्ट्वा कुपितं पुत्रमीषत्प्रस्फु[illegible]ताधरम् ।
सुनीतिरङ्कमारोप्य मैत्रेयैतदभाषत ॥
वत्स कः कोपहेतुस्ते कश्च त्वां नाभिनन्दति ।
कोऽवजानाति पितरं [illegible] [illegible] [illegible] ।

---

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]
(५) [illegible]

इत्युक्तः सकलं मात्रे कथयामास (१) तद्यथा ।
सुरुचिः प्राह भूपालप्रत्यक्षमपि (२) गर्विता ॥
विनिश्वस्येति कथिते तस्मिन् पुत्रे (३) सुदुर्मना:(४) ।
श्वासक्षामेक्षणा (५) दीना सुनीतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥
सुरुचिः सत्यमाहेदं स्वल्पभाग्योऽसि पुत्रक ।
न हि पुण्यवतां वत्स सपत्नैरेवमुच्यते (६) ॥
नोद्वेगस्तात (७) कर्त्तव्यः कृतं यद्भवता पुरा (८) ।
तत् कोऽपहर्त्तुं शक्नोति दातुं कयाकृतं त्वया ॥
राजासनं तथा छत्रं वराश्वा वरवारणाः ।
यस्य पुण्यानि तस्यैते मत्वैतच्छाम्य (९) पुत्रक ॥

---

(१) ध्रुव इति शेषः ।
(२) भूपालप्रत्यक्षमपि राज्ञः समक्षमेव ।
(३) तस्मिन् पुत्रे विनिश्वस्य इति कथिते कथितवति इति । कर्मणि सप्तमी चार्थे ।
(४) सुदुर्मना: अत्यन्तदुःखितहृदया ।
(५) श्वासेन क्षामे क्षीणे क्षामे इति यावत् ईक्षणे नेत्रे यस्याः सा ।
(६) सपत्नैः शत्रुभिः ।
(७) उद्वेगः क्षोभः ।
(८) पुरा पूर्वस्मिन् जन्मनि ।
(९) सर्वं राज्यादि एतत् मत्वा बुद्ध्वा शाम्य शान्तिं भज धैर्यं दर्शयेत्यर्थः ।

अन्यजन्मकृतैः पुण्यैः (१) सुरुच्या सुरुचिर्नृपः (२)।
भार्य्येति प्रोच्यते चान्या मद्विधा भाग्यवर्जिता ॥
पुण्योपचयसम्पन्नस्तस्याः पुत्रस्तथोत्तमः ।
मम पुत्रस्तथा जातः स्वल्पपुण्यो ध्रुवो भवान् (३)
तथापि दुःखं न भवान् कर्त्तुमर्हति पुत्रक ।
यस्य यावत् स तेनैव स्वेन तुष्यति बुद्धिमान् ॥
यदि वा दुःखमत्यर्थं सुरुच्या वचसा तव ।
तत् पुण्योपचये (४) यत्नं कुरु सर्वफलप्रदे ॥
सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः (५) प्राणिहिते रतः ।
निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः (६) ॥

ध्रुव उवाच ।

अम्ब यत्त्वमिदं प्रात्थ प्रशमाय (७) वचो मम ।

---

(१) सुरुच्येति शेषः ।
(२) सुरुचिः अतिप्रीतिमान् अत्यन्तमनुरक्त इति यावत् ।
(३) [illegible]
(४) पुण्योपचये पुण्यसञ्चये ।
(५) मैत्र सर्वेषु मित्रभावापन्नः ।
(६) आपः [illegible]
(७) प्रशमाय शोकशान्तये ।

नितद्दुर्वचसा (१) भिन्ने (२) हृदये मम तिष्ठति ॥
सोऽहं तथा यतिष्यामि (३) यथा सर्व्वोत्तमोत्तमम् ।
स्थानं प्राप्स्याम्यशेषाणां जगतामपि पूजितम् ॥
सुरुचिर्दयिता राज्ञस्तस्या जातोऽस्मि नोदरात् ।
प्रभावं पश्य मेऽम्ब त्वं हृदस्यापि (४) तवोदरे ॥
उत्तमः स मम भ्राता यो गर्भे न धृतस्तया ।
राजासनमवाप्नोतु पित्रा दत्तं तथास्तु तत् ॥
नान्यदत्तमभीप्सामि स्थानमम्ब स्वकर्मणा ।
इच्छामि तदहं स्थानं (५) यत्र प्राप पिता मम ॥
निर्जगाम गृहान्मातुरित्युक्त्वा मातरं ध्रुवः ।
पुराच्च निष्क्रम्य ततस्तद्बाह्योपवनं ययौ ॥

---

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]
(५) [illegible]

भरतोपाख्यानम् ।

—०००—

मैत्रेय उवाच ।

यदेतद्भगवताख्यातं भरतस्य महीपतेः ।
कथयिष्यामि चरितं तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥

पराशर उवाच ।

शालग्रामे (१) महाभागो भगवन्न्यस्तमानसः (२) ।
स उवास चिरं कालं मैत्रेय पृथिवीपतिः ॥
अहिंसादिष्वशेषेषु गुणेषु गुणिनां वरः ।
अवाप परमां काष्ठां (३) मनसश्चापि संयमे ॥
समित्पुष्पकुशादानं चक्रे देवक्रियाकृते (४) ।
नान्यानि चक्रे कर्माणि निःसङ्गो योगतापसः (५) ॥
जगाम सोऽभिषेकार्थमेकदा तु महानदीम् ।
सस्नौ तत्र ततश्चक्रे स्नानस्यानन्तरक्रियाः ॥

---

(१) शालग्रामे तदाख्ये स्थाने ।
(२) भगवति विष्णौ न्यस्तम् अर्पितं मानसं चित्तं येन ।
(३) परमां काष्ठाम् चरमसमुत्कर्षम् ।
(४) देवक्रियाकृते देवपूजार्थम् ।
(५) निःसङ्गः विषयासक्तिरहितः । योगतापस, योगतपस्तापस ।

आजगाम तत्तीर्थे (१) जलं पातुं पिपासिता ।
आसन्नप्रसवा ब्रह्मन्नेकैव हरिणी वनात् ॥
ततः समभवत्तत्र पीतप्राये जले तया ।
सिंहस्य नादः सुमहान् सर्वप्राणिभयङ्करः ॥
ततः सा सहसा त्रासादाप्लुता निम्नगातटम् (२) ।
अत्युच्चारोहणेनास्या नद्यां गर्भः पपात च ॥
तमुह्यमानं वेगेन वीचिमालापरिप्लुतम् ।
जग्राह स नृपो गर्भात् पतितं मृगपोतकम् ॥
गर्भप्रच्युतिदोषेण प्रोत्तुङ्गाक्रमणेन (३) च ।
मैत्रेय सापि हरिणी पपात च ममार च ॥
हरिणीं तां विलोक्याथ विपन्नां (४) नृपतापसः ।
मृगपोतं समादाय निजमाश्रममागतः ॥
चकारानुदिनञ्चासौ मृगपोतस्य वै नृपः ।
पोषणं पुष्यमाणश्च स तेन ववृधे मुने ॥
चचाराश्रमपर्यन्ते तृणानि गहनेषु सः (५) ।

---

(१) तत्तीर्थे तत्र नद्याः तीर्थम् अवतरणस्थानम् ।
(२) निम्नगातटं नदीतीरम् आप्लुता उत्पतिता आरोहितवती ।
(३) प्रोत्तुङ्गाक्रमणेन अत्युच्चारोहणेन । (४) विपन्नां मृताम् ।
(५) स मृग आश्रमपर्यन्ते आश्रमप्रान्ते स्थितेष्विति शेषः, गहनेषु वने
तृणानि चचार भक्षयामास ।

कुशाः काशा विराजन्ते बटवः सामगा इव (१) ॥
इत्थं चिरगते तस्मिन् स चक्रे मानसं मुनिः ।
प्रीतः प्रसन्नवदनः पार्श्वस्थे चाभवन्मृगे ॥
समाधिभङ्गस्तस्यासीत् (२) तन्मयत्वार्पितात्मनः (३) ।
संत्यक्तराज्यभोगर्द्धिस्वजनस्यापि भूपतेः ॥
कालेन गच्छता (४) सोऽथ कालं चक्रे (५) महीपतिः ।
पितेव सास्रं (६) पुत्रेण मृगपोतेन वीक्षितः ॥
मृगमेव सदाद्राक्षीत् त्यजन् प्राणानसावपि ।
तन्मयत्वेन (७) मैत्रेय नान्यत् किञ्चिदचिन्तयत् ॥

---

(१) कुशा काशाश्च तत्र हरिणशिशौ परिरीढते परिवर्त्तिते इत्थं इत्थं सुन्दरतया स्थितायां तत्र सामगा सामवेदाध्यायिनो बटवः कुमारा इव विराजन्ते सामगा बटवो मुनिसन्निधौ भवन्तीति भावः ।
(२) समाधिभङ्गः योगाभ्यासविच्छेदः ।
(३) तस्मिन् हरिणशिशौ ममत्वं स्नेहं तन्मयत्वं तस्मिन् अर्पितं यस्य स्थापितं चित्तं येन तस्य ।
(४) कालेन गच्छता गच्छति काले ।
(५) कालं चक्रे मृत्युं प्राप ।
(६) सास्रं साश्रुनेत्रम् ।
(७) तन्मयत्वेन तदेकचित्ततया ।

दूरं गत्वा च शार्दूलत्रासादभ्याययौ पुनः ॥
प्रातर्गत्वातिदूरञ्च सायमायात्यथाश्रमम् ।
पुनश्च भरतस्याभूदाश्रमस्योटजाजिरे (१) ॥
तस्य तस्मिन् मृगे दूरसमीपपरिवर्त्तिनि ।
चासीच्चेतः समासक्तं न ययावन्यतो (२) द्विज ॥
विमुक्तराज्यतनयः प्रोज्झिताशेषबान्धवः ।
ममत्वं स चकारोच्चैस्तस्मिन् हरिणबालके ॥
किं वृकैर्भक्षितो व्याघ्रैः (३) किं सिंहेन निपातितः ।
चिरायमाणे (४) निष्क्रान्ते तस्यासीदिति मानसम् ॥
एषा वसुमती तस्य खुराग्रक्षतकर्बुरा (५) ।
प्रीतये मम जातोऽसौ क्व ममैणकबालकः (६) ॥
विषाणाग्रेण मद्बाहुकण्डूयनपरो हि सः ।
क्षेमेणाभ्यागतोऽरण्यादपि मां सुखयिष्यति ॥
एते लूनशिखास्तस्य दशनैरचिरोद्गतैः ।

---

(१) उटज. पर्णशाला तस्य अजिरे अङ्गने ।
(२) अन्यतः अन्यस्मिन् विषये ।
(३) व्याघ्रैः व्याघ्रैर्वा भक्षित. ।
(४) चिरायमाणे आगमप्रतिनिवृत्तौ कालविलम्बे ।
(५) खुराग्राणामेव यानि क्षतानि तैः कर्बुरा विचित्रवर्णा ।
(६) एणकबालक. हरिणबालकः ।

कुशाः काशा विराजन्ते बटवः सामगा इव (१) ॥
इत्थं चिरगते तस्मिन् स चक्रे मानसं मुनिः ।
प्रीतः प्रसन्नवदनः पार्श्वस्थे चाभवन्मृगे ॥
समाधिभङ्गस्तस्यासीत् (२) तन्मयत्वादृतात्मनः (३) ।
संत्यक्तराज्यभोगर्द्धिस्वजनस्यापि भूपतेः ॥
कालेन गच्छता (४) सोऽथ कालं चक्रे (५) महीपतिः ।
पितेव सास्रं (६) पुत्रेण मृगपोतेन वीक्षितः ॥
मृगमेव तदाद्राक्षीत् त्यजन् प्राणानसावपि ।
तन्मयत्वेन (७) मैत्रेय नान्यत् किञ्चिदचिन्तयत् ॥

---

(१) कुशा काशाश्च तत्र हरितवर्णाश्च अचिरोद्गते अचिरजनिते दर्भे इमे मूर्द्धशिखा शिखरा यत्र सामगा सामवेदाध्यायिनो बटव कुमारा इव विराजन्ते सामगा बटवो मुण्डितशिरसो भवन्तीति भावार्थम् ।
(२) समाधिभङ्ग ध्यानाध्यानविच्छेद ।
(३) तस्मिन् हरिणशिशौ मनस एव तन्मयत्व तस्मिन् आहित अर्पित आत्मा चित्त येन तस्य ।
(४) कालेन गच्छता गच्छति काले ।
(५) कालं चक्रे मृत्युं प्राप ।
(६) सास्रं साश्रुनेत्रम् ।
(७) तन्मयत्वेन तदेकचित्ततया ।

महाभारतम्

परीक्षिदुपाख्यानम्

सौतिरुवाच।

ततोऽपरस्मिन् सम्प्राप्ते काले कस्मिंश्चिदेव तु।
परीक्षिन्नाम राजासीत् ब्रह्मन् (१) कौरववंशजः॥
मृगान् विध्यन् वराहांश्च तरक्षून् (२) महिषांस्तथा।
अन्यांश्च विविधान् वन्यांश्चचार (३) पृथिवीपतिः॥
स कदाचिन्मृगं विद्धा बाणेन निशितेन (४) वै।
पृष्ठतो धनुरादाय ससार गहने वने॥
परिश्रान्तः पिपासार्त्त आससाद मुनिं (५) वने।
गवां प्रचारेष्वासीनं (६) वत्सानां मुखनिःसृतम्।
भूयिष्ठमुपयुञ्जानं फेनमापिबतां पयः (७)॥

---

(१) ब्रह्मन्निति शौनकसम्बोधनम्।
(२) तरक्षु मृगभक्षी व्याघ्रविशेषः।
(३) वन्यान् वनचारिणो जन्तून्।
(४) निशितेन तीक्ष्णेन।
(५) मुनिं ऋषिम्।
(६) गवां प्रचारेषु [illegible]
(७) [illegible]

तमभिद्रुत्य (१) वेगेन स राजा संशितव्रतम् (२)।
अपृच्छद्धनुरुद्यम्य तं मुनिं क्षुच्छ्रमान्वितः (३)॥
भो भो ब्रह्मन्नहं राजा परीक्षिदभिमन्युजः।
मया विद्धो मृगो नष्टः कच्चित्तं दृष्टवानसि॥
स मुनिस्तु नोवाच किञ्चिन्मौनव्रते स्थितः।
तस्य स्कन्धे मृतं सर्पं क्रुद्धो राजा समासजत् (४)॥
समुत्क्षिप्य धनुष्कोट्या (५) स चैनत् समुपैक्षत (६)।
न च किञ्चिदुवाचैनं शुभं वा यदि वाशुभम्॥
स राजा क्रोधमुत्सृज्य व्यथितस्तं तथागतम् (७)।
दृष्ट्वा जगाम नगरमृषिस्त्वासीत्तथैव सः॥
न हि तं राजशार्दूलं क्षमाशीलो महामुनिः।

---

(१) अभिद्रुत्य अभिधाव्य तदभिमुखं गत्वेत्यर्थः।
(२) संशितव्रतम् अचलस्थितमौनव्रतम्।
(३) क्षुधा क्षुधया श्रमेण च अन्वितः।
(४) समासजत् समासञ्जयत् योजयामास। [illegible] स्कन्धे।
(५) धनुष्कोट्या धनुषोऽग्रभागेन।
(६) स च मुनिं एतत् स्कन्धे सर्पमोचनं समुपैक्षत उपेक्षते स्म, [illegible]
कीदृशी भवेदिति भाव।
(७) तथागतम् तादृशीमवस्थामापन्नं स्कन्धे अवसक्तसर्पमिति यावत्।

स्वधर्मनिरतं भूपं समाधिस्थोऽप्यधर्षयत् (१) ॥
न हि तं राजशार्दूलं तथाधर्मपरायणम्।
जानाति भरतश्रेष्ठस्तत एनमधर्षयत् ॥
तरुणस्तस्य पुत्रोऽभूत्तिग्मतेजा (२) महातपाः।
शृङ्गी नाम महाक्रोधो दुष्प्रसादो (३) महाव्रतः ॥
सख्योक्तः क्रीड़मानेन (४) स तत्र हसता किल।
ऋषिपुत्त्रेण नर्मार्थं (५) कृशेन द्विजसत्तमः ॥
तेजस्विनस्तव पिता तथैव च तपस्विनः।
शवं स्कन्धेन वहति मा शृङ्गिन् गर्व्वितो भव ॥
क्व ते पुरुषमानित्वं (६) क्व ते वाचस्तथाविधाः।
दर्पजाः पितरं द्रष्टा यस्त्वं शवधरं तथा ॥

---

(१) समाधिस्थ [illegible]। न [illegible] न [illegible]। [illegible] कृतम्।
(२) तिग्मतेजाः अतितेजस्वी [illegible]।
(३) दुष्प्रसादः प्रसादयितुमशक्यः कुपितो न प्रसीदतीत्यर्थः।
(४) क्रीड़मानेन क्रीडता। आत्मनेपदमार्षम्।
(५) नर्म क्रीड़ा परिहास इति यावत्। तदर्थं [illegible]।
(६) पुरुषमानित्वं पुरुषाभिमान।

तत्सुतः स तेजस्वी शृङ्गी कोपसमन्वितः ।
मृगयायां गुरुं श्रुत्वा धर्षितन्तेन सख्युना ॥
स तं राजानमुद्दिश्य तपसा [illegible] ।
[illegible] शापं स ईदृशं सुमहायशाः ॥

शृङ्ग्युवाच ।

राजा परीक्षिता नाम सप्तमे दिवसे (१) ।
तक्षकः (२) विषेणोग्रेण नेष्यति भुजङ्गमः ॥

शमीक उवाच ।

किं मे प्रियं कृतं तात [illegible] दुरात्मन् ।
[illegible] ॥

सूत उवाच ।

स राजा शप्तो (३) यात परीक्षिदभिमन्युजः ।
समाप [illegible] गौतमम् ॥
न [illegible] राजा परीक्षित् [illegible] ।
[illegible] (४) ॥

---

(१) [illegible] आर्षं प्रयोग ।
(२) [illegible] ।
(३) [illegible] आर्षं प्रयोग ।
(४) [illegible] ।

तं स्थाणुभूतं तिष्ठन्तं (१) क्षुत्पिपासाश्रमातुरः ।
पुनः पुनर्मृगं नष्टं पप्रच्छ पितरं तव ॥
स च मौनव्रतोपेतो नैव तं प्रत्यभाषत ।
तस्य राजा धनुष्कोट्या सर्पं स्कन्धे समासजत् ॥
शृङ्गिंस्तव पिता सोऽपि तथैवास्ते धृतव्रतः ।
सोऽपि राजा स्वनगरं प्रस्थितो गजसाह्वयम् (२) ॥
श्रुत्वैनमृषिपुत्रस्तु शवं स्कन्धे प्रतिष्ठितम् (३) ।
कोपसंरक्तनयनः शशाप नृपतिं तदा ।
वार्य्युपस्पृश्य (४) तेजस्वी क्रोधवेगबलात्कृतः ।
योऽसौ वृद्धस्य तातस्य तथाकृच्छ्रगतस्य (५) ह ।
स्कन्धे मृतं समासाक्षीत् पन्नगं राजकिल्बिषी (६) ॥
तं पापमतिसंक्रुद्धस्तक्षकः पन्नगेश्वरः ।
द्विजानामवमन्तारं कुरूणामयशस्करम् ।

---

(१) स्थाणुवत् स्थाणुर्वृक्षस्तद्वदवतिष्ठमानम् । निष्पन्दमिति यदि स्थले स्यात् ।
(२) गजसाह्वयं गजेन हस्तिना साह्वयं नामतुल्यं हस्तिनापुरमित्यर्थः ।
(३) निहितमिति शेषः ।
(४) वारि जलम् उपस्पृश्य स्पृष्ट्वा आचम्येति यावत् ।
(५) तथाकृच्छ्रगतस्य तादृशे कष्टोदये स्थितस्य ।
(६) राजकिल्बिषी राजसु पातकी दुर्वृत्तो राजेति यावत् ।

[illegible] (१) [illegible] इति ।
इति [illegible] पृष्टो दिनकर[illegible]त् ।
[illegible] (२) ॥
स [illegible] पितरं पृष्टो [illegible] वै ।
[illegible] ॥
[illegible] पित[illegible]न् ।
[illegible] (३) [illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] (४) [illegible] ॥
[illegible] पिता [illegible] ।
न हि [illegible] ॥
[illegible] (५) [illegible] (६) ।

(१) [illegible]
[illegible] पाठः ।
(२) [illegible] ।
(३) [illegible] पाठः ।
(४) [illegible] ।
(५) [illegible] इति पाठः ।
(६) [illegible] ।

सोऽहं पश्यामि धर्मज्ञ त्वयि धर्मभृतां वर ।
पुत्रत्वं ब्राह्मणाश्चैव तथान्यस्य च मानवम् ॥
स त्वं शमपरो भूत्वा क्षमामाहारमाचरन् ।
नर क्रोधमिमं हित्वा नैवं धर्मं प्रहास्यसि (१) ॥
क्रोधो हि धर्मं हरति यतीनां दुःखसञ्चितम् ।
शम एव यतीनां हि क्षमिणां सिद्धिकारकः ॥
क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम् ।
तस्माच्चरेथाः (२) सततं क्षमाशीलो जितेन्द्रियः ॥

ययात्युपाख्यानम् ।

क्रुद्धेनोशनसा (३) शप्तो ययातिर्नाहुषस्तदा (४) ।
पूर्व्वं वयः (५) परित्यज्य जरां सद्योऽन्वपद्यत ॥

---

(१) एवम् इत्थमनुष्ठिते सति धर्मं न प्रहास्यसि न त्यक्ष्यसि सदैव परिरक्षितो न भविष्यतीत्यर्थः ।
(२) चरेथाः चरेः । आत्मनेपदमार्षम् ।
(३) उशनसा शुक्राचार्येण ।
(४) नहुषस्य अपत्यं पुमान् नाहुषः ।
(५) पूर्व्वं वयः सौवनम् ।

[illegible]

कालो दीनमपारं पुत्रं मम पुत्रोऽद्य (१) ।
प्रसादं कुरु मे प्रदान् त्वरा मां न [illegible] ॥

[illegible]

[illegible] यथा सर्वःस्विन्मत्तो मामीर्शि भूत्विय ।
[illegible] संभा स्वमन्दिरम् संवासय यदीयसि ॥

[illegible]

[illegible] स अधिपूरकान् पुण्यभाक् संशिंभाक् तथा ।
[illegible] मे दशाहय. (२) पुत्रमूढानामनुसम्पताम् ॥

[illegible]

संसारमिदिर्शिस करा यदिदं मनुष्याक्ष ।
[illegible] अर्चन (३) न च पापमवाप्स्यसि (४) ॥
[illegible] दाक्षति मे पुत्रो यः स राजा भविष्यति ।
[illegible] मं शिंसादेव सकृपस्यस्तथैव च ॥
[illegible] प्राप्य ययातिस्तु स्वपुरं प्राप्य येव हि ।
पुनं कोऽद्य परित्यज्य (५) मर्दुमिसयवंदय: ।

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]
(५) [illegible]

जरा वली च मां तात पलितानि (१) च पर्य्यगुः (२)।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने (३)॥
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं (४) जरया सह।
यौवनेन त्वदीयेन चरेयं (५) विषयानहम्॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनस्ते यौवनं त्वहम्।
दत्त्वा स्वं प्रतिपत्स्यामि (६) पाप्मानं जरया सह॥

यदुरुवाच।

जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः।
तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीष्य इति मे मतिः॥
सितश्मश्रुर्निरानन्दो जरया शिथिलीकृतः।
वलीसन्ततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलः कृशः॥
अशक्तः कार्य्यकरणे परिभूतः सयौवनैः।
सहोपजीविभिश्चैव तां जरां नाभिकामये (७)॥

---

(१) अथवा केशानां शौक्ल्यं पलितम्।
(२) पर्य्यगुः परिप्राप्तानि।
(३) यौवने यौवनकार्य्ये विषयभोगे।
(४) पाप्मानं पापं जराजनितं [illegible]।
(५) चरेयम् उपभुञ्जीय।
(६) प्रतिपत्स्यामि प्रतिपत्स्ये। परस्मैपदमार्षम्।
(७) दुर्दर्शः विकृतरूपः। परिभूतः अवज्ञातः। सयौवनैः युवभिः। सहोपजीविभिः अनुचरैः।

सन्ति मे बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ।
जरां ग्रहीतुं धर्मज्ञ तस्मादन्यं वृणीष्व (१) वै ॥

ययातिरुवाच ।

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
तस्मादराज्यभाक् तात प्रजा तव भविष्यति ॥
तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् ।
स्वञ्चैव प्रतिपत्स्यामि (२) पाप्मानं जरया सह ॥

तुर्वसुरुवाच ।

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम् (३) ।
बलरूपान्तकरणीं बुद्धिप्राणप्रणाशिनीम् ॥

ययातिरुवाच ।

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
तस्मात् प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति ॥
एवं स तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः ।
शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत् ॥

---

(१) वृणीष्व प्रार्थयस्व ।
(२) प्रतिपत्स्ये परिग्रहीष्यामि ।
(३) काम्यन्ते इति कामाः विषयाः ।

द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् ।
जरां वर्षसहस्रं मे यौवनं स्वं ददस्व च ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् ।
स्वं चादास्यामि (१) भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह ॥

द्रुह्युरुवाच ।

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम् ।
वाग्भङ्गश्चास्य भवति तां जरां नाभिकामये ॥

ययातिरुवाच ।

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
तस्मात् द्रुह्यो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित् ॥
अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
एकं वर्षसहस्रन्तु चरेयं यौवनेन ते ॥

अनुरुवाच ।

जीर्णः शिशुवदादत्तेऽकालेऽन्नमशुचिर्यथा ।
न जुहोति च कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये ॥

ययातिरुवाच ।

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
जरादोषस्त्वयोक्तो यत् तस्मात्त्वं (२) प्रतिपत्स्यसे ।
प्रजाश्च यौवनं प्राप्ता विनशिष्यन्त्यनो तव ॥

---

(१) [illegible] चादास्य दरकैदमार्गम् ।
(२) [illegible]

पूरो त्वं मे प्रियः पुत्रस्त्वं वरीयान् भविष्यसि ।
जरा वली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ॥
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ।
पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच पूरुः पितरमञ्जसा (१) ।
यथात्थ मां महाराज तत् करिष्यामि ते वचः ॥
प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं जरया सह ।
गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान् यथेप्सितान् ॥
जरसाहं प्रतिच्छन्नो (२) वयोरूपधरस्तव ।
यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथात्थ माम् ॥

ययातिरुवाच ।

पूरो प्रीतोऽस्मि ते वत्स प्रीतश्चेदं ददामि ते ।
सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥
एवमुक्त्वा ययातिस्तु स्मृत्वा काव्यं महातपाः ।
संक्रामयामास जरां तदा पूरौ महात्मनि ॥
पौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः ।
प्रीतियुक्तो नृपश्रेष्ठश्चचार विषयान् प्रियान् ।
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम् ॥

---

(१) अञ्जसा झटिति कालविलम्बाभावेन इत्यर्थः ।
(२) प्रतिच्छन्नः व्याप्तः, अभिभूत इति यावत् ।

धर्म्मेण च प्रजा सर्व्वाः यथावदनुरञ्जयन्।
ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः॥
स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः (१)।
अविरोधेन धर्म्मस्य चचार सुखमुत्तमम्॥
स सम्प्राप्य शुभान् कामांस्तृप्तः खिन्न (२) पार्थिव।
कालं वर्षसहस्रान्तं सस्मार मनुजाधिपः॥
यदा स पश्यते (३) कालं धर्म्मात्मा तं महीपतिः।
पूर्णं मत्वा ततः (४) कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह॥
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालमरिन्दम।
सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति (५)
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय (६) एवाभिवर्द्धते॥
यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्य्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्॥

---

(१) विषयगोचरः विषयासक्तः विषयभोगरत इति यावत्।
(२) खिन्न श्रान्तः, भोगे निःस्पृह इति यावत्।
(३) पश्यते पश्यन्। आत्मनेपदत्वमार्ष[illegible]।
(४) ततः तदा।
(५) कामः विषयाभिलाषः। कामानां विषयाणां भोग्यवस्तूनामिति यावत्।
(६) भूयः अधिकतरम्।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः(१)सुखम् ।
पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयासक्तचेतसः ।
तथाप्यनुदिनं तृष्णा ममैतेष्वभिजायते ॥
तस्मादेनामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।
निर्द्वन्द्वो निर्ममो (२) भूत्वा चरिष्यामि मृगैः सह ॥
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाणेदं स्वयौवनम् ।
राज्यञ्चेदं गृहाण त्वं त्वं हि मे प्रियकृत् सुतः ॥
प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नाहुषस्तदा ।
प्रत्यपद्यत पूरुश्च यौवनं पुनरात्मनः ॥
अभिषेक्तुकामं नृपतिं (३) पूरुं पुत्रं कनीयसम् (४) ।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो ।
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं यच्छसि पूरवे ॥
यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनु तुर्वसुः ।

---

(१) प्राणान्तिको रोगः प्राणान्तं यावत् तिष्ठतीत्यर्थः तथा तृष्णा यावज्जीवमवतिष्ठत इति भावः ।
(२) निर्द्वन्द्वः सुखदुःखरागद्वेषादिद्वन्द्वरहितः । निर्ममः ममताशून्यः शीतोष्णादिषु विषयेषु प्रीतिशून्य इति यावत् ।
(३) अभिषेक्तुमिच्छन् सर्वाधिकारभाजम् ।
(४) कनीयसम् । स्वार्थः सर्वान्त्य । कनीयांसमिति यौगिकः ।

शर्मिष्ठायाः सुतो द्रुह्युस्ततोऽनुः पूरुरेव च ।
कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान् राज्यमर्हति ।
एतत् सम्बोधयामस्त्वां धर्मं त्वं प्रतिपादय ॥

७९ अध्यायः ।

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः ।
ज्येष्ठं प्रति यथा (१) राज्यं न देयं मे कथञ्चन ॥
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः ।
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ॥
मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः ।
स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्त्तते पितृमातृषु ॥
यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च ।
द्रुह्युना चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम् ॥
पूरुणा मे कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः ।
कनीयान् मम दायादो धृता येन जरा मम ॥
[illegible]

[illegible]

पुत्रो यस्त्वानुवर्त्तेत स राजा पृथिवीपतिः ।
भवतोऽनुनयाम्येवं पूरु राज्येऽभिषिच्यताम् ॥
१४१ अः ।
यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः ॥
अर्हः पूरुरिदं राज्यं (१) यः सुतः प्रियकृत्तव ।
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् (२) ॥
पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा ।
अभ्यषिञ्चत ततः पूरुं राज्ये स्वे सुतमात्मजम् ॥
दत्त्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः (३) ।
पुरात् स निर्ययौ राजा ब्राह्मणैस्तापसैः सह ।

—

जतुगृहदाहः ।

वैशम्पायन उवाच ।

शृणु विस्तरशो राजन् (४) वदतो मे परन्तप ।
दाहं जतुगृहस्यास्मात् पाण्डवानाञ्च मोक्षणम् ॥

---

१ इदं राज्यम् [illegible] राज्यम् । [illegible] ।
२ [illegible] इति शेषः ।
३ दीक्षितः कृतसङ्कल्पः ।
४ [illegible] ।

प्राणाधिकं (१) भीमसेनं कृतविद्यं धनञ्जयम् ।
दुर्योधनो लक्षयित्वा पर्यतप्यत दुर्मनाः ॥
ततो वैकर्तनः (२) कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः (३) ।
अनेकैरभ्युपायैस्ते (४) जिघांसन्ति स्म पाण्डवान् ॥
पाण्डवा अपि तत् सर्वं प्रतिजज्ञुर्यथागतम् (५) ।
उद्भावनमकुर्वन्तो (६) विदुरस्य मते स्थिताः ॥
गुणैः समुदितान् (७) दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा ।
कथयाञ्चक्रिरे तेषां गुणान् संसत्सु भारत ॥
प्रज्ञाचक्षुरचक्षुष्ट्वाद्धृतराष्ट्रो जनेश्वरः (८) ।
राज्यं न प्राप्तवान् पूर्वं स कथं नृपतिर्भवेत् ॥
तथा शान्तनवो भीष्मः सत्यसन्धो महाव्रतः ।
प्रत्याख्याय पुरा राज्यं न स जातु ग्रहीष्यति ॥
ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम् ।

धर्मविद्वान् राज्यस्य सत्यवान् वेदवित्तमः ॥
स हि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित् ।
सपुत्रं विविधैर्भोगैर्योजयिष्यति पूजयन् ॥
तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि जल्पताम् ।
युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥
स तप्यमानो दुष्टात्मा तेषां वाचो न चक्षमे ।
ईर्ष्यया चापि संतप्तो धृतराष्ट्रमुपागमत् ॥
ततो विरहितं (१) दृष्ट्वा पितरं परिपूज्य सः ।
पौरानुरागसंतप्तः पश्चादिदमभाषत ॥
श्रुता मे (२) जल्पतां तात पौराणामशिवा गिरः ।
त्वामनादृत्य भीष्मं च पतिमिच्छन्ति पाण्डवम् ॥
मतमेतच्च भीष्मस्य न स राज्यं बुभुक्षति ।
अस्माकन्तु परां पीडां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः ॥
पितृतः प्राप्तवान् राज्यं पाण्डुरात्मगुणैः पुरा ।
त्वमप्यगुणसंयोगात् (३) प्राप्तं राज्यं न लब्धवान् ॥
स एव पाण्डोर्दायाद्यं (४) यदि प्राप्नोति पाण्डवः ।

---

(१) विरहितम् बन्धुजनादिरहितम् एकाकिनमित्यर्थः ।

(२) मे मया इत्यर्थः ।

(३) अगुणत्व अन्धत्वयोगोऽर्थः ।

(४) दायाद्यं धनादिविभागमिव तेनैव दायादम् पाण्डुना अर्जितं यदस्य राज्यमिति यावत् ।

तस्य पुत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्यापि चात्मजः ॥
ते वयं राजवंशेन हीनाः सह सुतैरपि ।
अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते ॥
सततं निरयं (१) प्राप्ताः परपिण्डोपजीविनः ।
न भवेम यथा राजंस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥
　　एवं श्रुत्वा तु पुत्रस्य प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ।
धृतराष्ट्रो द्विधाचित्तः (२) शोकार्त्तः समपद्यत ॥
दुर्य्योधनश्च कर्णश्च शकुनिः सौबलस्तथा ।
दुःशासनचतुर्थास्ते मन्त्रयामासुरेकतः (३) ॥
ततो दुर्य्योधनो राजा धृतराष्ट्रमभाषत ।
पाण्डवेभ्यो भयं न स्यात्तान् विवासयतां भवान् ।
निपुणेनाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥
　　धृतराष्ट्रस्तु पुत्रेण श्रुत्वा वचनमीरितम् ।
मुहूर्त्तमिव सञ्चिन्त्य दुर्य्योधनमथाब्रवीत् ॥
धर्म्मनित्यः सदा पाण्डुस्तथा धर्म्मपरायणः ।
सर्व्वेषु ज्ञातिषु तथा मयि त्वासीद्विशेषतः (४) ॥

---

(१) निरयम् नरकावासतुल्यं नरकम् ।
(२) द्विधाचित्तः [illegible] इति भावः ।
(३) एकतः एकान्ते [illegible] इति भावः ।
(४) पाण्डुः सदा धर्म्मनित्यः तथा धर्म्मपरायणः सर्व्वेषु ज्ञातिषु विशेष[illegible]

तस्य पुत्रो यथा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः ।
गुणवान् लोकविख्यातः पौराणां सुसम्मतः (१) ॥
स कदं गन्धर्वेऽप्सराभिरुपाकर्तुं (२) वन्यादितः ।
पितृपैतामहाद्राज्यात् समस्ताद्वो विनिर्गतः ॥
भृता (३) हि पाण्डुनामाख्या सनन्द (४) सततं धृतम् ।
भृताः पुत्राश्च पौत्राश्च तेषामपि (५) विनिर्गताः ॥
ते पुरा सम्भृतास्तान पाण्डुना नागरा जनाः ।
कथं युधिष्ठिरस्तार्थे न नो दद्युः सबान्धवान् ॥

दुर्योधन उवाच ।

तास प्रकृतयः सर्वा पर्यवसान्ति पूजिताः ।
ध्रुवमस्मत्सहायास्ता भविष्यन्ति प्रधानतः (६) ॥

कथं तदा धर्मपरायण [illegible] । [illegible] धर्मं [illegible] [illegible] इत्थं उपमा [illegible] [illegible] भावः । धर्मपराय [illegible] कथं [illegible] भावः ।

(१) सुसम्मत बहुमत [illegible] भावः ।
(२) [illegible] निराकर्तुं [illegible] भावः ।
(३) भृताः [illegible] पुष्टाः ।
(४) [illegible] भावः ।
(५) [illegible]
(६) प्रधानतः प्रधानानि प्रधानानि प्रकृतयः प्रकृतिमुख्या इत्यर्थः ।

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] भारत ॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]

दुर्योधन उवाच।

मध्यस्थः (१) सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः (२)।
द्रोणः पुत्रप्राणो द्रौणी भविता नात्र संशयः ॥
कृपः शारद्वतश्चैव (३) यत एते ततो भवेत्।
द्रोणस्य भागिनेयश्च न स त्यक्ष्यति कर्हिचित् ॥
कलार्धबलसङ्ख्याकं (४) प्रभवन्त्संयतः परैः (५)।
न चैकः स समर्थोऽस्माकं पाण्डवार्येऽभियाधितुम् ॥
न चैकः स समर्थोऽस्माकं सह माता विनाशय।
धारणाप्यसमर्थैव यथा यास्ति (७) तथा मृत ॥
विनिद्रकरणं (८) घोरं हृदि शल्यमिवार्पितम्।
शोकपावकमुद्भूतं कर्मणैतेन नाशय ॥

---

(१) मध्यस्थः समदर्शी न कस्यापि पक्ष विशेषानुरागीत्यर्थः।
(२) मयि स्थितः मत्पक्ष स्थितः मयि एकान्तानुरक्त इत्यर्थः।
(३) शरद्वतः ऋषेः पुत्रात् जातः।
(४) [illegible]
(५) [illegible]
(६) [illegible]
(७) [illegible]
(८) विनिद्रकरणं निद्राप्रतिरोधकम्।



[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] (३)
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दुर्योधन उवाच ।

मध्यमः (१) सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो यदि स्थितः (२) ।
तत्र पुत्रशतो द्रोणो भविता नात्र संशयः ॥
कृपः शारद्वतश्चैव (३) यत्र पार्थो ततो भवेत् ।
द्रोणश्च भागिनेयश्च न च स्यन्दनि कर्हिचित् ॥
समालोकयतामार्य (४) मन्त्रयन्तं मया. परे. (५) ।
न चैकः स समर्थोऽस्मान् पाण्डवार्थेऽभियाधितुम् ॥
न चैकः स समर्थोऽस्मान् सह भ्राता विनाशय ।
पाण्डवानामर्थेव यथा यान्ति (७) तथा कुरु ॥
विनिश्चयार्थं (८) घोरं हृदि शल्यमिवार्पितम् ।
मोक्षपाशमपूर्वं सर्वेषामिव भाषय ॥

---

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]
(५) [illegible]
(६) [illegible]
(७) [illegible]
(८) [illegible]

ततो दुर्य्योधनो राजा सर्व्वाः प्रकृतयः (१) शनैः ।
अर्थमानप्रदानेन संजहार (२) महाभुजः ॥
धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित् कुशलमन्त्रिणः (३)।
कथयाञ्चक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम् (४)॥
कथ्यमाने तथा रम्ये नगरे वारणावते ।
गमने पाण्डुपुत्त्राणां जज्ञे तत्र मतिर्नृप ॥
यदा त्वमन्यत नृपो जातकौतूहला इति (५)।
उवाच चैतानथ तान् पाण्डवानम्बिकासुतः ॥
ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः ।
रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम् ॥
तत्ताता (६) यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते ।
सगणाः सान्वयाश्चैव (७) विहरध्वं यथामराः ॥
कञ्चित् कालं विहृत्यैवमनुभूय परां मुदम् ।
इदं वै हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ ॥

---

(१) प्रकृतयः प्रकृतीः। शनैः मन्दम् ।
(२) संजहार वशीचकार स्ववशं आकृष्टवानित्यर्थः ।
(३) कुशलमन्त्रिणः कुशलाः चतुराः मन्त्रिणः कार्य्यसचिवाः ।
(४) वारणावतं नगरमतिरम्यं रम्यमिति कथयामासुः ।
(५) जातकौतूहलाः जनमेजय जातौत्सुक्याः पाण्डवा इति शेषः
(६) ताताः वत्साः ।
(७) सगणाः भृत्यवर्गसहिताः । सान्वयाः अनुचरवर्गसहिताः.

धृतराष्ट्रस्य तं ज्ञात्वा समनुबन्धा (१) युधिष्ठिरः ।
आत्मनश्चासहायत्वं तथेति (२) प्रत्युवाच तम् ॥
ततो भीष्मं शान्तनवं विदुरञ्च महामतिम् ।
द्रोणञ्च बाह्लिकञ्चैव सोमदत्तञ्च कौरवम् ।
कृपमाचार्य्यपुत्रञ्च भूरिश्रवसमेव च ।
मान्यानन्यानमात्यांश्च ब्राह्मणांश्च तपोधनान् ।
पुरोहितांश्च पौरांश्च गान्धारीञ्च यशस्विनीम् ।
युधिष्ठिरः शनैर्दीन उवाचेदं वचस्तदा ॥
रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते ।
सगणास्तत्र यास्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात् (३) ॥
प्रसन्नमनसः सर्व्वे पुण्या वाचो विमुञ्चत (४)
आशीर्भिर्वृंहितानस्मान् न पापं प्रसहिष्यति (५) ॥
एवमुक्तास्तु ते सर्व्वे पाण्डुपुत्रेण कौरवाः ।
प्रसन्नवदना भूत्वा अन्ववर्त्तन्त (६) पाण्डवान् ॥

---

(१) अनुबन्धा अनुरोधः । आर्ष प्रयोगः ।
(२) तथेति तदा स्वीकृतवानिति ।
(३) शासनात् आदेशात् ।
(४) पुण्याः शुभा वाचः आशीर्वचनानि विमुञ्चत प्रयुङ्ध्वम् ।
(५) [illegible] आशीर्भिः वृंहितान् वर्द्धितान् अस्मान् पापम् अधर्म्मः न प्रसहिष्यते नाभिभविष्यति ।
(६) अन्ववर्त्तन्त अनुमोदितवन्तः ।

स्वस्त्ययनं वः पथि सदा भूतेभ्यश्चैव सर्व्वशः (१)।
मा च वोऽस्त्वशुभं किञ्चित् सर्व्वदा पाण्डुनन्दनाः
ततः कृतस्वस्त्ययना राज्यलम्भाय पार्थिवाः।
कृत्वा सर्व्वाणि कार्य्याणि प्रययुर्वारणावतम् (२)॥
एवमुक्तेषु राज्ञा (३) तु पाण्डुपुत्त्रेषु भारत।
दुर्य्योधनः परं हर्षमगच्छत् स दुरात्मवान् (४)॥
स पुरोचनमेकान्तमानीय भरतर्षभ (५)।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ सचिवं वाक्यमब्रवीत्॥
ममेयं वसुसम्पूर्णा पुरोचन वसुन्धरा।
यथेयं मम तद्वत्ते स तां रक्षितुमर्हसि॥
न हि मे कश्चिदन्योऽस्ति विश्वासिकतरस्त्वया।
सहायो येन सन्धाय मन्त्रयेय यथा त्वया॥
स रक्ष तात मन्त्रञ्च सपत्नांश्च ममोद्धर (६)।

---

(१) सर्व्वत्र. सर्व्वशः।
(२) ययुः सर्व्वानुमुदिता बभूवुः।
(३) राज्ञा धृतराष्ट्रेण।
(४) दुरात्मवान् दुरात्मा।
(५) भरतर्षभ भरतश्रेष्ठ जनमेजयसम्बोधनम्।
(६) सर्व्वं मन्त्रं रक्ष मा प्रकाशय मम सपत्नान् शत्रून् पाण्डवानिति शेषः [illegible] उद्धर [illegible]।

यथा च तत्र पश्येरन् (१) परीचन्तोऽपि (२) पाण्डवाः ।
आग्नेयमिति तत् कार्य्यमपि चान्येऽपि मानवाः (३) ॥
वेश्मन्येवं कृते तत्र गत्वा तान् परमार्च्चितान् ।
वासयेथाः पाण्डवेयान् कुन्तीञ्च ससुहृज्जनाम् ॥
आसनानि च दिव्यानि यानानि शयनानि च ।
विधातव्यानि पाण्डूनां यथा तुष्येत (४) वै पिता ॥
ज्ञात्वा च तान् सुविश्वस्तान् शयानानकुतोभयान् (५) ।
अग्निस्त्वया ततो देयो द्वारतस्तस्य (६) वेश्मनः ॥
स तथेति प्रतिज्ञाय कौरवाय (७) पुरोचनः ।
प्रायाद्रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥
स गत्वा त्वरितं राजन् (८) दुर्य्योधनमते स्थितः ।
यथोक्तं राजपुत्रेण सर्व्वं चक्रे पुरोचनः ॥

---

(१) पश्येरन् पश्येयुः । आत्मनेपदमार्षम् ।
(२) परीचन्त, परीक्षमाणाः । परस्मैपदमार्षम् ।
(३) यथा च पाण्डवाः, अन्ये च मानवाः परीक्षन्तोऽपि तत् च न ज्ञा[illegible]
भवनम् आग्नेयमिति न पश्येरन् नावबुध्येरन् तदपि कार्य्यमित्यन्वयः ।
(४) तुष्येत तुष्येत् । आत्मनेपदमार्षम् ।
(५) अकुतोभयान् [illegible] ।
(६) द्वारदेशे द्वारोपान्ते वा ।
(७) कौरवाय कौरव दुर्य्योधन [illegible] ।
(८) राजन्निति जनमेजयसम्बोधनम् ।

विषमं पश्यते (१) राजा सर्वथा च सुमन्दधीः।
कौरव्यो धृतराष्ट्रस्तु न च धर्मं प्रपश्यति॥
न हि पापमपापात्मा रोचयिष्यति (२) पाण्डवः।
भीष्मो वा बलिनां श्रेष्ठः कौन्तेयो वा धनञ्जयः॥
अधर्म्यमिदमत्यन्तं कथं भीष्मोऽनुमन्यते।
विवास्यमानानस्थाने नगरे योऽभिमन्यते (३)॥
पितेव हि नृपोऽस्माकमभूच्छान्तनवः पुरा।
विचित्रवीर्यो राजर्षिः पाण्डुश्च कुरुनन्दन॥
स किंनु (४) पुरुषव्याघ्रे देवभावं गते सति।
राजपुत्रानिमान् बालान् धृतराष्ट्रो न मृष्यते॥
वयमेतदनिच्छन्तः सर्व एव पुरोत्तमात्।
गृहान् विहाय गच्छामो यत्र गन्ता युधिष्ठिरः॥
तांस्तथावादिनः पौरान् दुःखितान् दुःखकर्शितः।
उवाच मनसा ध्यात्वा (५) धर्मराजो युधिष्ठिरः।

---

(१) विषमं पश्यते विरुद्धं पश्यति न सम्यक् [illegible] पश्यन् [illegible] धर्मार्थम्।

(२) यावत् अविरतम् धृतराष्ट्रोऽपि मित्रः। अपापात्मा [illegible]। रोचयिष्यति अभिनन्दिष्यति।

(३) असत्स्थाने अनुचितस्थाने नगरे [illegible] विवास्यमानान् अभिमन्यते अनुमोदते।

(४) [illegible] पुरुषव्याघ्रे [illegible]।

(५) [illegible]।

[illegible]
[illegible] (१) ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]
(५) [illegible]
(६) [illegible]
[illegible]
(७) [illegible]
(८) [illegible]

अलौहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्त्तनम् ।
यो वेत्ति न तु तं घ्नन्ति प्रतिघातविदं द्विषः (१) ॥
कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः ।
न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति (२) ॥
नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः ।

अभिप्रायमिति यावत् जानाति बुध्यते स विजय लभते, विजित इह अस्मिन् जगति पराभिप्रायविषये यः तथा कुर्य्यात् यथा आत्म निस्तरेत् अतिक्रामेत् । बुधार्थं विनाशार्थं शत्रुभिरपाय कल्पित तमुपायं अवहितो प्रतीकारः कार्य्य इति भाव ।

(१) य पुरुष शरीरपरिकर्त्तनं शरीरनाशकम् अलौहं लौहव्यतिरिक्तं निशितं तीक्ष्णं दुर्निवार्य्यमिति यावत । शस्त्रं परप्रयुक्तं नाशोपायं वेत्ति बुध्यते द्विष शत्रव प्रतिघातविदं प्रतीकारसमर्थं तं न घ्नन्ति । अग्निदाहादपी बुधार्थं नाशोपाय शत्रुभि कल्पितः तत्प्रतीकार समर्थेदात्मानं रक्षितुमीति भाव ।

(२) कक्षघ्न कक्षकाष्ठादिदाहकश्चासौ शिशिरघ्नः शीतनाशको बिलौकस बिलवासिनो जीवान् न दहेत् शिशिरघ्न, वह्नि, महाकक्षे महावने बिलवासिनं इव न दहेत् विनाशयेत् इति बुद्ध्या य आत्मानं रक्षति स जीवति । अयमभि प्रायः दुष्टाभिप्रायमपि अरौ आत्मरक्षा विधेया [illegible] अत्तग्रहन् अरौ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आत्मग्रहन् तथा [illegible] [illegible] अरौ न कुर्य्यात् [illegible] भाव ।

[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

(१) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

(२) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

(३) [illegible]

(४) [illegible]

निवृत्ते विदुरे चापि भीष्मे पौरजने तथा।
अजातशत्रुमामन्त्र्य (१) कुन्ती वचनमब्रवीत्॥
क्षत्ता यदब्रवीद्वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव (२)।
त्वया च स तथेत्युक्तो जानीमो न च तद्वयम् (३)॥
यदीदं शक्यमस्माभिर्ज्ञातुं नैव च दोषवत् (४)
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्व्वं संवादं (५) तव तस्य च॥

युधिष्ठिर उवाच।

गृहादग्निश्च बोद्धव्य इति मां विदुरोऽब्रवीत्।
पन्थाश्च वो नाविदितः कश्चित् स्यादिति धर्म्मधीः॥
जितेन्द्रियश्च वसुधां प्राप्स्यतीति च सोऽब्रवीत्।
विज्ञातमिति तत् सर्व्वं प्रत्युक्तो विदुरो मया॥

वैशम्पायन उवाच।

अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाताः फाल्गुनस्य ते।
वारणावतमासाद्य ददृशुर्नागरं जनम्॥
ततः सर्व्वाः प्रकृतयो नगराद्वारणावतात्।
अभिजग्मुर्नरश्रेष्ठान् श्रुत्वैव परया मुदा॥

---

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]
(५) [illegible]

ते समासाद्य कौन्तेयान् वारणावतका (१) जनाः ।
कृत्वा जयाशिषः (२) सर्व्वे परिवार्य्यावतस्थिरे ॥
तैर्वृतः पुरुषव्याघ्रो धर्म्मराजो युधिष्ठिरः ।
विबभौ देवसङ्काशो (३) वज्रपाणिरिवामरैः ॥
सत्कृताश्चैव पौरैस्ते पौरान् सत्कृत्य चानघाः (४) ।
अलङ्कृतं जनाकीर्णं विविशुर्वारणावतम् ॥
ते प्रविश्य पुरीं वीरास्तूर्णं जग्मुरथो गृहान् ।
ब्राह्मणानां महीपाल रतानां स्वेषु कर्म्मसु ॥
नगराधिकृतानाञ्च (५) गृहाणि रथिनां तथा (६) ।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठा वैश्यशूद्रगृहाण्यपि ॥
अर्च्चिताश्च नरैः पौरैः पाण्डवा भरतर्षभ ।
जग्मुरावसथं पश्चात् पुरोचनपुरःसराः ॥
तेभ्यो भक्ष्याणि पानानि शयनानि शुभानि (७) च ।
आसनानि च मुख्यानि (८) प्रददौ स पुरोचनः ॥

---

(१) वारणावतका वारणावतवासिनः ।
(२) जयाशिषः जयम् आशिषश्च ।
(३) देवसङ्काशः देवसदृशः ।
(४) अनघा निष्पापाः विशुद्धचरिता इति यावत् ।
(५) नगराधिकृतानां नगररक्षणे नियुक्तानां पुरुषाणाम् ।
(६) रथिनां क्षत्रियाणाम् ।
(७) शुभानि रमणीयानि मङ्गलानि वा ।
(८) मुख्यानि प्रधानानि महामूल्यानीति यावत् ।

निहते विदुरे चापि भीमे पौरजने तथा ।
अजानतामुमामन्त्र्य (१) कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥
तथा यदब्रवीद्वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव (२) ।
त्वया च स तथेत्युक्तो आत्मनो न च तद्वयम् (३) ॥
यदर्थं गतमस्माभिस्तत् नैव च दोषवत् (४)
[illegible] मिच्छामि नं सर्वं सवादं (५) तत्र तथ्य च ॥

[illegible]

[illegible] विदुरोऽब्रवीत् ।
[illegible] कथितं [illegible]

[illegible]

ते समासाद्य कौन्तेयान् वारणावतका (१) जनाः ।
कृत्वा जयाशिषः (२) सर्व्वे परिवार्य्योपतस्थिरे ॥
तैर्वृतः पुरुषव्याघ्रो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विबभौ देवसङ्काशो (३) वज्रपाणिरिवामरैः ।
सत्कृताश्च पौरैस्ते पौरान् सत्कृत्य चानघाः (४) ।
अलङ्कृतं जनाकीर्णं विविशुर्वारणावतम् ॥
ते प्रविश्य पुरीं वीरास्तूर्णं जग्मुरथो गृहान् ।
ब्राह्मणानां महीपाल रतानां स्वेषु कर्मसु ॥
नगराधिकृतानाञ्च (५) गृहाणि रथिनां तदा (६) ।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठा वैश्यशूद्रगृहाण्यपि ॥
अर्चिताश्च नरैः पौरैः पाण्डवा भरतर्षभ ।
जग्मुरावसथं पश्चात् पुरोचनपुरःसराः ॥
तेभ्यो भक्ष्याणि पानानि शयनानि शुभानि च (७) ।
आसनानि च मुख्यानि (८) प्रददौ स पुरोचनः ॥

तत्र ते सत्कृतास्तेन सुमहार्हपरिच्छदाः ।
उपास्यमानाः पुरुषैरूषुः पुरनिवासिभिः ॥
दशरात्रोषितानान्तु तत्र तेषां पुरोचनः ।
निवेदयामास गृहं शिवाख्यमशिवं (१) तदा ॥
तत्र ते पुरुषव्याघ्रा विविशुः सपरिच्छदाः (२) ।
पुरोचनस्य वचनात् कैलासमिव गुह्यकाः (३) ॥
तच्चागारमभिप्रेक्ष्य सर्वधर्मभृतां वरः ।
उवाचाग्नेयमित्येवं भीमसेनं युधिष्ठिरः ।
जिघ्राणोऽस्य (४) वसागन्धं सर्पिर्जतुविमिश्रितम् ॥
विश्वस्तं मामयं पापो दग्धुकामः पुरोचनः ।
तथा हि वर्त्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः (५) ॥
इमां तु तां महाबुद्धिर्विदुरो दृष्टवांस्तदा (६) ।
आपदं तेन मां पार्थ स सम्बोधितवान् (७) पुरा ॥

---

(१) शिवाख्यमशिवम् [illegible] शिवमिव [illegible] दाहकत्वात् बाह्यार्थे निर्मितमाश्चर्यं गृहमित्यर्थः ।
(२) सपरिच्छदाः सानुचराः सपरिजनाः ।
(३) गुह्यकाः कुबेरानुचराः देवयोनिविशेषाः ।
(४) जिघ्राण जिघ्रन् । [illegible]
(५) मन्दः मूढः [illegible] इति यावत् पुरोचनः दुर्योधनस्य वशवर्त्ती सन् तथा वर्त्तते तथा प्रवर्त्तते [illegible]
(६) दृष्टवान् बुद्धवान् ।
(७) सम्बोधितवान् बोधयामास ।

ते वयं बोधितास्तेन नित्यमप्यहितैषिणा।
पित्रा कनीयसा स्नेहाद्बुद्धिमन्तोऽशिवं गृहम्।
अनार्यैः सुकृतं गूढैर्दुर्योधनवशानुगैः॥

भीमसेन उवाच।

यदीदं गृहमाग्नेयं विहितं (१) मन्यते भवान्।
तत्रैव साधु गच्छामो यत्र पूर्वोषिता (२) वयम्॥

युधिष्ठिर उवाच।

इह यत्तैर्निराकारैर्वस्तव्यमिति रोचये।
अप्रमत्तैर्विचिन्वद्भिर्गतिमिष्टां ध्रुवामितः (३)॥
यदि विन्देत (४) चाकारमस्माकं स पुरोचनः।
क्षिप्रकारी ततो भूत्वा प्रसह्यापि दहेत (५) नः॥
नायं बिभेत्युपक्रोशादधर्माद्वा (६) पुरोचनः।
तथाहि वर्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः॥

---

(१) विहितं निर्मितम्।

(२) पूर्वोषिता पूर्वं कृतवासाः।

(३) यत्तैः यत्नवद्भिः। निराकारैः आकारहीनैः गूढाकारैरिति यावत् [illegible] भाव। अप्रमत्तैः अवहितैः। [illegible] यावत् [illegible] विचिन्वद्भिः अन्विष्यद्भिः [illegible] यावत्।

(४) विन्देत लभेत जानीयादिति यावत्।

(५) दहेत दहेत्। आत्मनेपदमार्षम्। (६) उपक्रोशः निन्दा।

वयं तु यदि दाहस्य बिभ्यतः प्रद्रवेम (१) हि।
स्पशैर्नो घातयेत् सर्व्वान् राज्यलुब्धः सुयोधनः (२)॥
अपदस्थान् पदे तिष्ठन्नपक्षान् पक्षसंस्थितः।
हीनकोशान् महाकोशः प्रयोगैर्घातयेद्ध्रुवम् (३)॥
तदस्माभिरिमं पापं (४) तञ्च पापं सुयोधनम्।
वञ्चयद्भिर्निवस्तव्यं (५) छन्नावासं (६) क्वचित् क्वचित्॥
ते वयं मृगयाशीलाश्चराम वसुधामिमाम्।
तथा नो विदिता मार्गा भविष्यन्ति पलायताम् (७)॥
भौमञ्च (८) बिलमद्यैव करवाम सुसंवृतम्।

---

(१) दाहस्य बिभ्यतः दाहात् [illegible] दाहभयेनेति भावः। प्रद्रवेम पलायेमहि।
(२) स्पशैः चरैः। राज्यलुब्धः राज्यार्थ्याकाङ्क्षी।
(३) अपदस्थान् पदहीनान्। पदसंस्थितः पदे [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] इति यावत्। हीनकोशान् निर्धनान् महाकोशः [illegible]
प्रयोगैः [illegible] [illegible]।
(४) इमं पुरोचनम्। पापं पापात्मानम्
(५) वञ्चयद्भिः वञ्चयमानैः। [illegible]।
(६) छन्नावासम् [illegible] [illegible] [illegible] इति यावत् [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
(७) पलायताम् पलायमानानाम्। [illegible]
(८) भौमं भूविवरमिति।

गूढोच्छ्रितास्त्र भस्तत्र (१) हुताशः संप्रधक्ष्यति ॥
यमतोऽत्र (२) यथा चास्माकं पुण्येन पुरोचनः ।
पौरो वापि जनः कश्चित्तथा कार्य्यमरिन्दमैः (३) ॥

वैशम्पायन उवाच ।

विदुरस्य सुहृत् कश्चित् खनकः कुशलः शुचिः ।
विविक्ते पाण्डवान् राजन्निदं वचनमब्रवीत् (४) ॥
प्रहितो विदुरेणास्मि खनकः कुशलो भृशम् ।
पाण्डवानां प्रियं कार्य्यमिति किं करवाणि वः (५)
...पक्षे चतुर्दश्यां रात्रावस्य पुरोचनः ।
भवनस्य तव द्वारि प्रदास्यति हुताशनम् ॥
मात्रा सह प्रदग्धव्याः पाण्डवाः पुरुषर्षभ ।
इति व्यवसितं (६) तस्य धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मते ॥
किञ्चित्त विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचासि (७) पाण्डव

(१) [illegible]
[illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]
[illegible]
[illegible]
(६) [illegible] (७) [illegible]
(८ [illegible]

प्रादुरासीत्तदा तेन बुबुधे (१) स जनव्रजः (२)।
तदवेक्ष्य गृहं दीप्तमाहुः (३) पौराः कृशानुना।
दुर्य्योधनप्रयुक्तेन पापेनाकृतबुद्धिना (४)।
गृहमात्मविनाशाय (५) कारितं दाहितञ्च तत्॥
अहो धिक् धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्नातिसमञ्जसी (६)।
यः शुचीन् पाण्डुदायादान् (७) दाहयामास शत्रुवत्।
दिष्ट्या त्विदानीं पापात्मा दग्धोऽयमतिदुर्मतिः।
अनागसः (८) सुविश्वस्तान् यो (९) ददाह नरोत्तमान्।
एवं ते विलपन्ति स्म वारणावतका जनाः।
परिवार्य (१०) गृहं तच्च तस्थू रात्रौ समन्ततः॥
पाण्डवाश्चापि ते सर्व्वे सह मात्रा सुदुःखिताः।
बिलेन तेन निर्गत्य जग्मुर्द्रुतमलक्षिताः॥

---

(१) बुबुधे ज्ञातवान्।
(२) जनव्रजः वारणावतवासी लोकसमूहः।
(३) दीप्तं प्रज्वलितम्।
(४) अकृतबुद्धिना अपरिपक्वबुद्धिना अपरिणामदर्शिनेति यावत्।
(५) आत्मविनाशाय स्वजनध्वंसाय।
(६) धृतराष्ट्रस्य बुद्धिः समञ्जसी न्यायमार्गानुसारिणी नाति न भवति।
(७) शुचीन् विशुद्धचरितान् पाण्डुदायादान् पाण्डुतनयान्।
(८) अनागसः निरपराधान्।
(९) यः दुर्य्योधनः।
(१०) परिवार्य्य वेष्टयित्वा।

द्रौपदीयुधिष्ठिरसंवादः ।

ततो वनगताः पार्थाः सायाह्ने सह कृष्णया (१) ।
उपविष्टाः कथाश्चक्रुर्दुःखशोकपरायणाः ॥
प्रिया च दर्शनीया च पण्डिता च पतिव्रता (२) ।
अथ कृष्णा धर्मराजमिदं वचनमब्रवीत् ॥
न नूनं तस्य पापस्य दुःखमस्मासु (३) किंचन ।
विद्यते धार्तराष्ट्रस्य नृशंसस्य दुरात्मनः ॥
यस्त्वां राजन् मया सार्धमजिनैः प्रतिवासितम् (४) ।
वनं प्रस्थाप्य दुष्टात्मा नान्वतप्यत (५) दुर्मतिः ॥
आयसं (६) हृदयं नूनं तस्य दुष्कृतकर्मणः ।
यस्त्वां धर्मपरं श्रेष्ठं रूक्षाण्यश्रावयत्तदा (७) ॥
सुखोचितमदुःखार्हं (८) दुरात्मा ससुहृद्गणः ।

[illegible]

यदपश्यं सभायां त्वां राजभिः परिवारितम्।
तच्च राजन्नपश्यन्त्याः का शान्तिर्हृदयस्य मे॥
या त्वाहं (१) चन्दनादिग्धमपश्यं सूर्यवर्चसम्।
सा त्वां पङ्कमलादिग्धं दृष्ट्वा मुह्यामि भारत (२)॥
या त्वाहं कौशिकैर्वस्त्रैः (३) शुभ्रैराच्छादितं पुरा।
दृष्टवत्यस्मि राजेन्द्र सा त्वां पश्यामि चीरिणम् (४)॥
यांस्ते भ्रातॄन् महाराज युवानो मृष्टकुण्डलाः (५)।
अभोजयन्त मिष्टान्नैः सूदाः परमसंस्कृतैः (६)॥
सर्वांस्तानद्य संप्रेक्ष्य वने वन्येन जीविनः (७)।
अदुःखार्हान् मनुष्येन्द्र नोपशाम्यति मे मनः॥
भीमसेनमिमञ्चापि दुःखितं वनवासिनम्।
ध्यायतः किं न मन्युस्ते प्राप्ते काले विवर्द्धते (८)॥

(१) या त्वाम्।
(२) चन्दनादिग्धम् चन्दनेन अङ्केन दग्धितम्। मुह्यामि मोहमापन्ना
विचेतना भवामीति यावत्।
(३) कौशिकैः कृमिकोषजातैः पट्टसूत्रनिर्मितैरिति यावत्।
(४) चीरिणम् चीरधारिणम्। चीरं वल्कलम्।
(५) मृष्टकुण्डलाः उज्ज्वलकुण्डलधारिणः।
(६) परमसंस्कृते अतिशयेन संस्कृतैः परमसंस्कृतानि मिष्टा
इत्यर्थः। सर्वाणि अतीवस्वादूनि यानि।
(७) वन्येन वनोद्भवेन फलमूलादिना।
(८) ध्यायतः चिन्तयतः भीमसेनस्य दुःखं वनोचितस्य इत्यर्थः।

[illegible] (१) प्रभुः (२) ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] (६) ॥
[illegible] ।
[illegible] (७) ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]

दृष्टा वनगतं पार्थमदुःखार्हं सुखोचितम् ।
न च ते वर्द्धते मन्युस्तेन मुह्यामि भारत ॥
यो देवांश्च मनुष्यांश्च सर्पांश्चैकरथोऽजयत् (१) ।
तं ते वनगतं दृष्टा कस्मान्मन्युर्न वर्द्धते ॥
यो यानैरद्भुताकारैर्हयैर्नागैश्च संवृतः ।
प्रसह्य वित्तान्यादत्त पार्थिवेभ्यः परन्तपः ॥
क्षिपत्येकेन वेगेन (२) पञ्च बाणशतानि यः ।
तं ते वनगतं दृष्टा कस्मान्मन्युर्न वर्द्धते ॥
श्यामं बृहन्तं तरुणं चर्मिणामुत्तमं रणे (३) ।
नकुलं ते वने दृष्टा कस्मान्मन्युर्न वर्द्धते ॥
दर्शनीयञ्च शूरञ्च माद्रीपुत्रं युधिष्ठिर ।
सहदेवं वने दृष्टा कस्मात् क्षमसि (४) पार्थिव ॥
नकुलं सहदेवञ्च दृष्टा ते दुःखितावुभौ ।
अदुःखार्हौ मनुष्येन्द्र कस्मान्मन्युर्न वर्द्धते ॥
द्रुपदस्य कुले जातां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः ।
मां ते वनगतां दृष्टा कस्मान्मन्युर्न वर्द्धते ॥

---

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]

धृष्टद्युम्नस्य भगिनीं वीरपत्नीमनुव्रताम् (१) ।
मां वै वनगतां दृष्ट्वा कस्मात् क्षमसि पार्थिव ॥
नूनञ्च तव वै नास्ति मन्युर्भरतसत्तम ।
यत्ते भ्रातॄंश्च माञ्चैव दृष्ट्वा न व्यथते मनः ॥
न निर्मन्युः क्षत्रियोऽस्ति लोके निर्वचनं स्मृतम् (२) ।
तदद्य त्वयि पश्यामि क्षत्रिये विपरीतवत् (३) ॥
यो न दर्शयते तेजः क्षत्रियः काल आगते (४) ।
सर्व्वभूतानि तं पार्थ सदा परिभवन्त्युत ॥
तत्त्वया न क्षमा कार्य्या शत्रून् प्रति कथञ्चन ।
तेजसैव हि ते शक्या निहन्तुं नात्र संशयः ॥
तथैव यः क्षमाकाले क्षत्रियो नोपशाम्यति (५) ।
अप्रियः सर्व्वभूतानां सोऽमुत्रेह च (६) नश्यति ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

---

(१) वीरपत्नीम् वीरा, [illegible] । अनुव्रताम् पतिपरायणाम् [illegible] । सर्व्वथा [illegible] परिभवस्य [illegible] इति भाव. ।
(२) क्षत्रियः क्रोधहीनो न भवतीति लोके प्रसिद्धिरस्ति ।
(३) विपरीतवत् विपरीतमिव ।
(४) तेज. वीर्यम् । काले आगते तेजोदर्शनकाले प्राप्ते ।
(५) नोपशाम्यति न प्रशमं गच्छति ।
(६) अमुत्र परलोकम् इह च अस्मिन् लोके ।

प्रह्लादस्य च संवादं (१) बलेर्वैरोचनस्य (२) च ॥
असुरेन्द्रं महाप्राज्ञं धर्माणामागतागमम् (३) ।
बलिः पप्रच्छ दैत्येन्द्रं प्रह्लादं पितरं पितुः ॥
क्षमा स्विद् (४) श्रेयसी तात उताहो तेज इत्युत ।
एतन्मे संशयस्तात यथावद्ब्रूहि पृच्छते (५) ॥
श्रेयो यदत्र (६) धर्मज्ञ ब्रूहि मे तदसंशयम् ।
करिष्यामि हि तत् सर्वं यथावदनुशासनम् (७) ॥
तस्मै प्रोवाच तत् सर्वमेवं पृष्टः पितामहः ।
सर्वनिश्चयवित् (८) प्राह बलये (९) परिपृच्छते ॥
न श्रेयः सततं तेजो न नित्यं श्रेयसी क्षमा ।
इति तात विजानीहि द्वयमेतदसंशयम् ॥
यो नित्यं क्षमते तात बहून् दोषान् स विन्दति ।
भृत्याः परिभवन्त्येनमुदासीनास्तथारयः (१०) ॥

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]
(५) [illegible]
(६) [illegible]
(७) [illegible]
(८) [illegible]
(९) [illegible]
(१०) [illegible]

सर्व्वभूतानि चाप्यस्य न नमन्ते (१) कदाचन ।
तस्मान्नित्यं सदा नारी परिष्टैरपपाटिता (२) ॥
पटभाण्डैर्न सन्त्या भजन्ते बहुदोषताम् ।
आदानुवाप्य वित्तानि प्रार्थयन्तोऽन्यचेतसः (३) ॥
यानं यम्भाण्यलङ्कारान् गन्धानाच्छादनानि च ।
भोजनान्यथ पानानि सर्व्वोपकरणानि च ॥
आदर्शाद्यधिकृता (४) यथाकाममचेतसः (५) ।
प्रदिष्टानि (६) च देयानि न दद्युर्भर्त्तृशासनात् (७) ॥
न चैनं भर्त्तृपूजाभिः (८) पूजयन्ति कथञ्चन ।
अवज्ञानं हि लोकेऽस्मिन् मरणादपि गर्हितम् ॥
एते चान्ये च बहवो नित्यं दोषाः समागताम् ।
अथ वैरोचनी दोषानिमान् विज्ञानमागताम् ।
अस्थास्ये यदिवा (९) स्थाने सततं रजसावृतः ।

---

(१) अस्य न नमन्ते नैवानुवर्त्तन्ते [illegible] कदाचिदपि ।   (२) अपपाटिता [illegible]
(३) प्रार्थयन्ति अभिलषन्ति । अन्यचेतसः अपचितस्य
(४) अधिकृता, ग्रामादिरक्षणे नियुक्ता पुरुषाः ।
(५) अचेतसः मूढहृदयस्य ।
(६) प्रदिष्टानि प्रार्थितो दीयमानमिति प्रज्ञातानि ।
(७) भर्त्तृशासनात् भर्त्तृशासनदुष्ट्या ।
(८) भर्त्तृपूजाभिः प्रभुश्रीवत्सादैः ।
(९) यदिवा अथवा ।

क्रुद्धो दण्डान् प्रणयति विविधान् स्वेन तेजसा (१) ॥
मित्रैः सह विरोधञ्च प्राप्नुते तेजसावृतः (२) ।
आप्नोति द्वेष्यतां चैव लोकात् स्वजनतस्तथा (३) ॥
क्रोधाद्दण्डान् मनुष्येषु विविधान् पुरुषो नयन् (४) ।
भ्रश्यते (५) शीघ्रमैश्वर्य्यात् प्राणेभ्यः स्वजनादपि ॥
योऽपकर्तॄंश्च (६) हन्तॄंश्च तेजसैवोपगच्छति (७) ।
तस्मादुद्विजते लोकः सर्पाद्वेश्मगतादिव (८) ॥
यस्मादुद्विजते लोकः कथं तस्य भवो (९) भवेत् ।
अन्तरं तस्य दृष्ट्वैव लोको विकुरुते ध्रुवम् (१०) ॥
तस्मान्नात्युत्सृजेत्तेजो (११) न च नित्यं मृदुर्भवेत् ।

---

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]
(५) [illegible]
(६) [illegible]
(७) [illegible]
(८) [illegible]
(१०) [illegible]
(११) [illegible]

यः पुनः पुरुषः क्रोधं नित्यं न सहते (१) शुभे।
तस्याभवाय भवति क्रोधः परमदारुणः ॥
क्रोधमूलो विनाशो हि प्रजानामिह दृश्यते।
तत् कथं मादृशः क्रोधमुत्सृजेल्लोकनाशनम् (२) ॥
क्रुद्धः पापं नरः कुर्य्यात् क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते (३) ॥
वाच्यावाच्यं हि कुपितो न प्रजानाति कर्हिचित्।
नाकार्य्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते तथा।
आत्मानमपि च क्रुद्धः प्रेषयेद्यमसादनम् ॥
एतान् दोषान् प्रपश्यद्भिर्जितः क्रोधो मनीषिभिः।
इच्छद्भिः परमं श्रेय इह चामुत्र चोत्तमम् ॥
तं क्रोधं वर्ज्जितं धीरैः कथमस्मद्विधश्चरेत् (४)।
एतत् द्रौपदि सन्धाय (५) न मे मन्युः प्रवर्त्तते ॥
आत्मानञ्च परञ्चैव त्रायते महतो भयात्।
क्रुध्यन्तमप्रतिक्रुध्यन् (६) द्वयोरेष चिकित्सकः (७) ॥

(१) न सहते न पराभयत।
(२) उत्सृजेत् प्रगृह्णीत।
(३) श्रेयस श्रेष्ठान् मान्यानिति यावत्।
(४) कथं न आचरेत् अवलम्बेत इति यावत्।
(५) सन्धाय विविच्य। (६) अप्रतिक्रुध्यन् अक्षमाणः।
(७) एवं अक्षमाण पुरुष द्वयोः आत्म परस्य चेत्युभयोः चिकित्सकः त्राण-
कर्त्ता अन्यथायामुभयोरपि प्राणविनाशस्य सम्भावितत्वात्।

यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं प्रज्ञया प्रतिबाधते ।
तेजस्विनं तं विद्वांसो मन्यन्ते तत्त्वदर्शिनः ॥
दाक्ष्यं ह्यमर्षः शौर्य्यञ्च शीघ्रत्वमिति (१) तेजसः ।
गुणाः क्रोधाभिभूतेन न शक्या प्राप्तुमञ्जसा (२) ॥
यदि न स्युर्मानुषेषु क्षमिणः पृथिवीसमाः ।
न स्यात् सन्धिर्मनुष्याणां क्रोधमूलो हि विग्रहः (३) ॥
क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म(४) तपस्विनाम् ।
क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमा यज्ञः क्षमा शमः ।
तां क्षमां तादृशीं कृष्णे कथमस्मद्विधस्त्यजेत् ॥
इह सम्मानमृच्छन्ति परत्र च शुभां गतिम् ।
येषां मन्युर्मनुष्याणां क्षमयाभिहतः (५) सदा ॥

---

(१) दाक्ष्यं कर्मसु कौशलम् अमर्षः परकृतापमानासहिष्णुता । शौर्य्यं शूरता विपक्षपराभवेच्छेति यावत् । शीघ्रत्वम् आशुकारिता ।
(२) अञ्जसा सहसैव ।
(३) विग्रहः विरोधः ।
(४) ब्रह्म वेदः ।
(५) अभिहतः पराजितः ।

धृतराष्ट्रविलापः ।

जयत्सु पाण्डुपुत्रेषु श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
धृतराष्ट्रश्चिरं ध्यात्वा सञ्जयं वाक्यमब्रवीत् ॥

यदाश्रौषं जातुषाद्वेश्मनस्तान्
मुक्तान् पार्थान् पञ्च कुन्त्या समेतान् ।
युक्तञ्चैषां (१) विदुरं स्वार्थसिद्धौ
तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥

यदाश्रौषं द्रौपदीं रङ्गमध्ये
लक्ष्यं भित्त्वा निर्जितामर्जुनेन ।
शूरान् पाञ्चालान् पाण्डवेयाय युक्तान् (२)
तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥

यदाश्रौषं मागधानां वरिष्ठं
जरासन्धं क्षत्रमध्ये ज्वलन्तम् ।
दोर्भ्यां हतं भीमसेनेन गत्वा
तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥

यदाश्रौषं दिग्जये पाण्डुपुत्रै-
र्वशीकृतान् भूमिपालान् प्रसह्य (३) ।

---

(१) [illegible]

(२) [illegible]

(३) [illegible]

यदाश्रौषं त्रिदिवस्थं (१) धनञ्जयं
　　शक्रात् साक्षाद्दिव्यमस्त्रं यथावत् ।
अधीयानं शंसितं सत्यसन्धं (२)
　　तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥

यदाश्रौषमसुराणां वधार्थे
　　किरीटिनं यातममित्रकर्षणम् ।
कृतार्थं चाप्यागतं शक्रलोकात् (३)
　　तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥

यदाश्रौषं घोषयात्रागतानां (४)
　　बन्धं गन्धर्वैर्मोक्षणञ्चार्जुनेन ।
स्वेषां सुतानां कर्णबुद्धौ रतानां
　　तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥

---

(१) त्रिदिवस्थं त्रिदिवे स्वर्गे, तत्र स्थितम् ।

(२) शंसितम् शंसितव्रतं सत्यप्रतिज्ञत्वसाधने यत्नं कुर्वाणमित्यर्थः । सत्यसन्धम् सत्यप्रतिज्ञम् ।

(३) कृतार्थे कृतकार्यं सम्पादितासुरवधरूपकार्यमिति यावत् ।

(४) घोष आभीरपल्ली गोरक्षकाणामावास इति यावत् तत्र यात्रा गमनं घोषयात्रा घोषयात्रागतानां द्वैतवनवर्त्तिनीमाभीरपल्लीं प्रस्थितानाम् । ऐश्वर्यप्रदर्शनेन द्वैतवनस्थितान् पाण्डवान् परितापयितुं गोदर्शन व्यपदेशेन तत्र गता दुर्य्योधनादयो गन्धर्वैर्बद्धा अभूवन् ।

यस्येमा गा विक्रममेकमाहुः (१)
तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥
यदाश्रौषं लोक[illegible] कृष्ण
[illegible] कृष्णाम् ।
[illegible]
तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥
यदाश्रौषं [illegible]
[illegible] ।
[illegible] (२)
[illegible] सञ्जय ॥
[illegible]
[illegible] मध्यमानि [illegible] ।
[illegible]
[illegible] सञ्जय ॥
[illegible]
[illegible] ।

[illegible]

यदाश्रौषं चाक्रोशतो महारथान्
[illegible]र्जुनस्यात्मकाय ११ ।
[illegible] [illegible] निहतानर्जुनेन
तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥
[illegible] [illegible]मर्त्यं [illegible]
[illegible]न गुप्तम् ४ ।
[illegible] [illegible] [illegible]रमेक प्रविष्ट
[illegible] विजयाय सञ्जय ॥
[illegible]
[illegible] [illegible]भवत् ॥
[illegible]
[illegible] विजयाय सञ्जय ॥
[illegible]
[illegible] [illegible]रागान ।

[illegible]
[illegible]

भवितव्यं तथा तच्च नानुशोचितुमर्हसि ।
दैवं प्रज्ञाविशेषेण कोऽतिवर्त्तितुमर्हति (१) ।
विधातृविहितं (२) मार्गं न कश्चिदतिवर्त्तते ॥
कालमूलमिदं सर्वं भावाभावौ सुखासुखे ॥
कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः (३) ॥
अतीता नागता भावा (४) ये च वर्त्तन्ति (५) साम्प्रतम् ।
तान् कालनिर्मितान् बुद्ध्वा न संज्ञां हातुमर्हसि ॥
इत्येवं (६) पुत्रशोकार्त्तं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
आश्वास्य स्वस्थमकरोत् सूतो गावल्गणिस्तदा ॥

[illegible]

(१) दैवं विधिनिर्बन्धम्। प्रज्ञाविशेषेण बुद्धिवैशद्येन। अतिवर्त्तितुम् [illegible]।
(२) विधातृविहितं दैवनिर्मितम्।
(३) दुरतिक्रमः [illegible]।
(४) [illegible]
(५) वर्त्तन्ते [illegible]
(६) [illegible]